देश-विदेश

41

अनियतकालीन बुलेटिन

अगस्त–2022

सहयोग राशि तीस रुपये

इस अंक में विशेष

- ★ श्रीलंका संकट : नवउदारवाद की कारगुजारियों का शिलालेख
- ★ अर्थव्यवस्था की तबाही के समय अमृत महोत्सव का खटराग
- ★ अग्निपथ योजना : नौजवानों की बर्बादी पर
- ★ मिर्ज़ा ग़ालिब : फिर मुझे दीद-ए-तर याद आया

देश–विदेश

अनियतकालीन बुलेटिन (41)

अंक – 41

अगस्त 2022

सहयोग राशि

तीस रुपये

सम्पादक

उमा रमण

उपसम्पादक

विक्रम प्रताप

सम्पर्क सूत्र

502/10 एस 1 साई कॉम्प्लैक्स,
डी ब्लॉक गली न. 1, अशोक नगर, शाहदरा
दिल्ली 110093

Email: deshvidesh@rediffmail.com
फोन न. : 09818622601
www.deshvidesh.net

उमा रमण द्वारा प्रोग्रेसिव प्रिन्टर्स, ए- 21 झिलमिल इन्डस्ट्रियल एरिया, शाहदरा, दिल्ली-93 से मुद्रित और 502/10 एस 1 साई कॉम्प्लैक्स, डी ब्लॉक गली न. 1, अशोक नगर, शाहदरा दिल्ली-93 से प्रकाशित किया गया।

इस अंक में–

सम्पादकीय

श्रीलंका संकट : नवउदारवाद की कारगुजारियों का शिलालेख 1

ये मौसमे गुल गरचे, तरब खेज बहुत है...
(अर्थव्यवस्था की तबाही, बेरोजगारी और मजदूरों की बर्बादी के समय अमृत महोत्सव का खटराग) -अमित इकबाल 6

बेरोजगार भारत का युग -माया जॉन 10

अग्निपथ योजना : नौजवानों की बर्बादी पर उद्योगपतियों को मालामाल करने की कवायद -मोहित पुण्डिर 12

जलवायु परिवर्तन के चलते लू के थपेड़े -अमरपाल 15

खामोश हो रहे अफगानी सुर - प्रो. कृष्ण कुमार रत्तू 17

इन दिनों कट्टर हो रहा हूँ मैं -अनूप मणि त्रिपाठी 19

आजादी को आपने कहीं देखा है! -अनूप मणि त्रिपाठी 21

साम्प्रदायिकता और संस्कृति -प्रेमचन्द 24

मिर्ज़ा ग़ालिब : फिर मुझे दीद-ए-तर याद आया -विजय गुप्त 26

समाचार–विचार

निगरानी पूँजीवाद का बढ़ता दायरा 33

भाजपा नेता के फार्म हाउस पर चल रहे वेश्यालय पर छापा 35

भाजपा शासित राज्यों में बुल्डोजर का बढ़ता आतंक 36

भाजपा शासित राज्यों की पुलिस का दमनकारी रवैया 38

भारत देश बना कुष्ठ रोग की राजधानी 39

मौत के घाट उतारती जोमैटो की योजना 40

स्विस बैंक में जमा कालेधन में 50 फीसदी की बढ़ोतरी 41

वैश्विक लिंग असमानता रिपोर्ट 42

आजादी के अमृत महोत्सव की चकाचौंध 43

श्रीलंका पर दबाव बनाते पकड़े गये अडानी के "मैनेजर" 44

भारत में निरंकुश शासन : वी-डैम की रिपोर्ट 45

पलायन मजा या सजा -मनीषा 46

सर्वोच्च न्यायलय द्वारा याचिकाकर्ता को दण्डित करना 47

एक अकादमिक अवधारणा 48

कम कहना ही बहुत ज्यादा है : एडुआर्डो गैलियानो 49

'आपरेशन कमल': खतरे में लोकतंत्र -सीमा श्रीवास्तव 51

ज्ञानवापी मस्जिद का गढ़ा गया विवाद -मोहित वर्मा 54

पेट्रोलियम और कोयला संकट के पीछे का खेल -विशाल विवेक 55

जनतांत्रिक समालोचना की जरूरी पहल -रामकिशोर मेहता 56

प्रतिबन्धों का मास्को पर कुछ असर नहीं पड़ा है -ओरबान 59

गैर बराबरी की महामारी -शालू पंवार 60

दुनिया में चौथे नम्बर का अमीर अडानी समूह -विजय शंकर सिंह 62

सम्पादकीय

श्रीलंका संकट : नवउदारवाद की कारगुजारियों का शिलालेख

चार महीने से आर्थिक तबाही के खिलाफ संघर्षरत श्रीलंका की जनता ने 9 जुलाई को राष्ट्रपति भवन पर कब्जा कर लिया और राष्ट्रपति गोताबाया राजपक्षे को देश छोड़कर भागने पर मजबूर कर दिया। हर्षोल्लास और तात्कालिक जीत की तस्वीरें समाचार माध्यमों पर छाई हुई हैं और दुनिया भर के नवउदारवादी शासक घबराये हुए हैं।

इस साल की शुरुआत में ही श्रीलंका की अर्थव्यवस्था भुगतान संतुलन के गम्भीर संकट में फँस गयी थी, विदेशी मुद्रा भण्डार खाली हो चुका था, बुनियादी जरूरत की चीजों के आयात और विदेशी कर्ज की किश्त चुकाने के लिए भी डॉलर नहीं था। कीमतें बेलगाम बढ़ रही थीं। प्राकृतिक गैस, पेट्रोल, डीजल और अनाज की आपूर्ति में सेना को तैनात किया गया। तीसरी दुनिया के उन्नत जीवन स्तर और औसत आय वाला एक खुशहाल देश श्रीलंका दिवालिया हो गया।

गोताबाया की सरकार ने जन आन्दोलन को दबाने की भरपूर कोशिश की, सेना को सड़कों पर उतारा, आपातकाल लगाया लेकिन विरोध बढ़ता ही गया। श्रीलंका की जनता के ऐतिहासिक आन्दोलन से जुड़ी हुई अधिकतर खबरें सामने आ चुकी हैं। लेकिन श्रीलंका दिवालिया कैसे हो गया और इसके लिए कौन जिम्मेदार है, यह असुविधाजनक सवाल इस फसाने में गायब है।

विनाशकाले विपरीत बुद्धि

2016 से ही श्रीलंका में ऑर्गेनिक खेती का भारी प्रचार हो रहा था। असल मामला यह था कि विदेशी मुद्रा भण्डार लगातार घटता जा रहा था जबकि सरकार उर्वरक और कीटनाशकों के आयात घटाकर डॉलर बचाना चाहती थी। सरकार ने उर्वरक मुक्त खेती की योजना पेश तो की लेकिन कृषि वैज्ञानिकों और किसान संगठनो का भारी विरोध देखकर पीछे हट गयी।

2019 में गोटाबाया राजपक्षे की सरकार बौद्ध धर्मोन्माद और सिंहली श्रेष्ठतावाद के जरिये साम्प्रदायिक नफरत और अधिनायकवाद फैलाकर सत्ता में आयी थी। उसे विश्वास था कि कूपमण्डूकता और फूटपरस्ती की शिकार जनता उसके नापाक इरादों को नहीं समझ पायेगी। इसी भरोसे 2021 में सरकार ने आयात खर्च बचाने के लिए उर्वरक मुक्त खेती की योजना लागू कर दी। विरोध करनेवालों को देशद्रोही बता दिया गया तथा रासायनिक उर्वरक और कीटनाशकों के आयत पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

कृषि क्षेत्र को पूरी तरह ऑर्गेनिक खेती में तब्दील करने के चलते 2021 में कृषि उत्पादन में 45 प्रतिशत तक की गिरावट आयी। इस योजना के खिलाफ किसानों का आन्दोलन तेज हो गया और उन्होंने कृषि मंत्री को बंधक बना लिया। आखिरकार, हरजाने के तौर पर सरकार ने किसानों को 40 अरब रुपये का भुगतान किया और भारी मात्रा में कृषि उत्पादों का आयात किया जबकि 36 अरब रुपये में श्रीलंका सालभर की जरूरत का उर्वरक और कीटनाशक आयात कर सकता था। इसी साल ऑर्गेनिक खेती की नीति वापस ले ली गयी लेकिन देश की डाँवाडोल अर्थव्यवस्था को इसकी भारी कीमत चुकानी पड़ी।

श्रीलंका की अर्थव्यवस्था को डुबाने में 2019 के बजट ने भी योगदान किया है। इस बजट में पूँजीपति वर्ग और माध्यम वर्ग को करों में भारी छूट दी गयी थी। सरकार ने कार्पोरेट टैक्स 28 प्रतिशत से घटाकर 24 प्रतिशत और मूल्य वर्धन टैक्स (वैट) 15 प्रतिशत से घटाकर 8 प्रतिशत कर दिया था। इसके अलावा आयकर की सीमा 5 लाख से बढ़ाकर 30 लाख श्रीलंकाई रुपया कर दी थी और सम्पत्ति सम्बन्धी अन्य करों में भी छूट दी गयी थी। करों में इस छूट से सरकार को सालाना 2 अरब डॉलर का नुकसान हुआ। यह सब उस दौर में किया गया जब विदेशी मुद्रा भण्डार खाली होता जा रहा था और विदेशी कर्ज की किश्त चुकाना दूभर होता जा रहा था।

संकट की दस्तक

नवउदारवादी वैश्वीकरण ने बेमेल उत्पादक शक्तियों वाली अर्थव्यवस्थाओं को आपस में जोड़ा और छोटी तथा कमजोर अर्थव्यवस्थाओं को बाहरी कारकों पर बहुत ज्यादा निर्भर बना दिया। पर्यटन श्रीलंका में विदेशी मुद्रा आय का प्रमुख स्रोत था। शासक सोच रहे थे कि पर्यटन से होने वाली आय से वे विदेशी कर्जो की किश्त भर देंगे लेकिन उनकी गलत नीतियों और कोरोना महामारी ने उनकी उम्मीदों पर पानी फेर दिया। 2018 में पर्यटन

से 4.4 अरब डॉलर की आय हुई थी। 2019 में तथाकथित सिंघली राष्ट्रभक्तों के आतंकवादी गिरोहों ने चर्चों में बम विस्फोट करके 250 से ज्यादा ईसाइयों की हत्या कर दी थी। इससे पर्यटकों की संख्या में काफी गिरावट आयी। इसके बाद आयी कोरोना महामारी ने पर्यटन से होने वाली आय को लगभग ठप्प कर दिया। कोरोना थमने के कुछ ही समय बाद रूस और यूक्रेन के बीच युद्ध छिड़ गया, श्रीलंका में अधिकतर पर्यटक इन्ही देशों से आते थे। इससे विदेशी मुद्रा आय का एक प्रमुख स्रोत सूख गया।

श्रीलंका की अर्थव्यवस्था 2021 में ही डाँवाडोल होने लगी थी। अन्तरराष्ट्रीय बाजार में श्रीलंकाई रुपया तेजी से गिर रहा था लेकिन केन्द्रीय बैंक ने रुपये की कीमत नहीं घटायी। इसके कारण निर्यातकों को डॉलर के बदले ज्यादा सामान देना पड़ रहा था, इसलिए निर्यातकों ने निर्यात बहुत कम कर दिया और विदेशी मुद्रा की आय का यह बड़ा रास्ता भी सँकरा हो गया। इसके साथ ही विदेशों में खासकर खाड़ी देशों में काम करने वाले मजदूर भी विदेशी मुद्रा के बदले ज्यादा रुपया पाने के लिए सरकारी चैनलों के बजाय हवाला जैसे तरीकों से देश में रुपया भेजने लगे। कुल मिलाकर श्रीलंका की विदेशी मुद्रा आय के लगभग सभी स्रोत बन्द होते गये।

कर्ज के मर्ज की दवा भी कर्ज

नवउदारवाद के आर्थिक धर्माचार्य जो कल तक श्रीलंका की सफलता के ढोल पीट रहे थे, अब बता रहे हैं कि अर्थव्यवस्था 2016 से ही संकट में थी। कोरोना से ठीक पहले, 2019 में आईएमएफ ने श्रीलंका के बजट की तारीफ करते हुए कहा था कि एक उचित लक्ष्य वाले बजट के साथ आय आधारित वित्तीय सुदृढ़ीकरण को बढ़ावा देकर सरकार ने अच्छा काम किया है.... इससे मुद्रा भण्डार मजबूत होगा। आज यह भण्डार खाली पड़ा है और श्रीलंका दिवालिया हो चुका है।

श्रीलंका पर लगभग 35 अरब डॉलर का विदेशी कर्ज है। इसमें से अधिकांश कर्ज 2004 के बाद अमरीकी और यूरोपीय वित्तीय संस्थाओं, आईएमएफ, एशियाई विकास बैंक जैसी संस्थाओं से बहुत कड़ी शर्तों पर लिया गया है। कर्ज अदायगी के लिए श्रीलंका को हर साल अरबों डॉलर की किश्त भरनी पड़ती है। 2022 में ही उसे 6.9 अरब डॉलर की किश्त का भुगतान करना है।

2021 में ही श्रीलंका का विदेशी मुद्रा भण्डार घटकर केवल 2.4 अरब डॉलर रह गया था। इसके बावजूद सरकार ने विदेशी कर्ज की किश्त चुकायी क्योंकि कर्ज का बड़ा हिस्सा सोवेरन बॉण्ड बेचकर लिया गया था तथा शाख बचाने और अगले कर्जे लेने के लिए किश्त चुकाना जरूरी था। अगर किश्त चुकाने की मजबूरी न होती तो वहाँ की अर्थव्यवस्था पर्यटन रुक जाने के चलते विदेशी मुद्रा आय में आयी कमी को काफी हद तक झेल सकती थी। इससे रुपये की कीमत में गिरावट न आती और आय के दूसरे स्रोत जारी रहते, लेकिन विदेशी कर्जों की किश्तें श्रीलंका के मुद्रा भण्डार को लगातार खाली करती रही और इन्हीं कर्जों की शर्तों ने सरकार को मुद्रा भण्डार बढ़ाने के उपाय करने से रोके रखा। नतीजतन श्रीलंका का दिवालिया होना लाजमी था।

श्रीलंका के शासक आईएमएफ से 16 बार कर्ज ले चुके हैं और हर बार उसकी शर्तें पहले से कहीं ज्यादा कठोर होती गयी हैं। अब वे आईएमएफ से फिर कर्ज माँग रहे हैं। निश्चय ही, नया कर्ज और ज्यादा कठोर शर्तों पर दिया जायेगा जो आनेवाले समय में अर्थव्यवस्था को और गम्भीर संकट की ओर ले जायेगा।

क्या तबाही के लिए चीन जिम्मेदार है?

दिन-रात झूठ गढ़ने और फैलानेवाला दैत्याकार अमरीकी प्रचार तंत्र, श्रीलंका की तबाही की जिम्मेदारी चीन के मत्थे मढ़ने में जुटा है और सफल भी हो रहा है। वास्तव में, श्रीलंका की लूट में चीन की हिस्सेदारी बेहद कम है। श्रीलंका के कुल विदेशी कर्ज में उसका हिस्सा केवल 10 प्रतिशत है। श्रीलंका के कर्ज का 47 प्रतिशत आईएमएफ के जरिये अमरीका और पश्चिमी यूरोप के वित्तीय संस्थानों से आया है लेकिन किसी ने इन पर प्रश्न चिन्ह खड़ा नहीं किया।

2007 में श्रीलंका पोर्ट अथोरिटी के चेयरमैन सालिया विक्रमासूर्या ने चीन से 30 करोड़ डॉलर का कर्ज मिलने पर कहा था कि गृहयुद्ध के दौरान 30 करोड़ डॉलर का विशाल व्यवसायिक कर्ज मिल जाना बहुत बड़ी बात है। चीन ने यह कर्ज 6.3 प्रतिशत की ब्याज दर पर दिया था, जबकि उसी साल दूसरे वित्तीय संस्थानों से श्रीलंका ने 8.5 प्रतिशत की ब्याज दर पर कर्ज लिया था। 2012 में चीन ने केवल 2 प्रतिशत की ब्याज दर पर श्रीलंका को कर्ज दिया।

बताया जा रहा है कि चीन ने अपनी ओबीओआर परियोजना के लिए श्रीलंका को हम्बनटोटा बंदरगाह को विकसित करने के जाल में फँसाया। सच्चाई यह है कि श्रीलंका ने 2003 में ही इस बंदरगाह की योजना बना ली थी और इसके सर्वे का ठेका कनाडाई कम्पनी, इंटर्नेशनल डवलपमेंट एजेंसी को दिया था। उस वक्त ओबीओआर का कहीं नामोनिशान नहीं था। 2006 में डेनमार्क की कम्पनी रेम्बोल ने हम्बनटोटा के फिर से सर्वे का ठेका लिया। इसके निर्माण के लिये श्रीलंका ने चीन से पहले अमरीका और भारत को सहयोग का प्रस्ताव दिया था, जिसे दोनों ने नकार दिया

था। तमाम तथ्य गवाह हैं कि चीन को इस संकट का जिम्मेदार ठहराने की सारी कवायद दरअसल ड्रैगन के किस्से गढ़कर ड्रेकुला की रक्त-पिपासा को छुपाना है।

श्रीलंका कर्ज के जाल में कैसे फँसा?

श्रीलंका 1948 में ब्रिटेन की गुलामी से आजाद होकर एक डोमिनियन राष्ट्र बना, लेकिन आजादी के बाद भी उस पर विदेशी पूँजी का ही वर्चस्व कायम रहा। उत्पादन के प्रमुख क्षेत्र, कृषि पर पहले ब्रिटेन की बगान कम्पनियों का कब्जा था, आजादी के बाद इसमें दूसरे देशों की कम्पनियाँ भी घुस गयीं। इन्होंने देश की आन्तरिक माँग के अनुरूप पारम्परिक खेती को तबाह करके चाय, रबर, कॉफी आदि के बड़े-बड़े बागान विकसित किये।

जनता के बीच फूटपरस्ती को बढ़ावा देना ब्रिटिश उपनिवेशकों की आजमाई हुई चाल थी। 1948 के बाद बनी सेनानायके की सरकार ने भी इस नीति को जारी रखा तथा सिंघली और तमिल समुदायों के बीच टकराव को बढ़ावा दिया। 1956 में सिंघली ओनली एक्ट पारित करके दोनों समुदायों के बीच दुश्मनी को बढ़या गया और 1958 में दोनों समुदायों के बीच जबरदस्त दंगे हुए।

विदेशी पूँजी के वर्चस्व ने श्रीलंका को उपभोक्ता सामानों के साथ ही कृषि उत्पादों का भी आयातक बना दिया था। 1965 में यह अर्थव्यवस्था भुगतान संतुलन के गम्भीर संकट में फँस गयी और श्रीलंका को पहली बार आईएमएफ से कर्ज लेना पड़ा। इस पहले कर्ज की शर्त यह थी कि सरकार जन कल्याणकारी योजनाओं में कटौती करके बजट घाटा कम करे, निजी और विदेशी पूँजी पर टैक्स घटाए, और जनता को दी जाने वाली सब्सिडी में कटौती करे।

आईएमएफ के कर्ज से अर्थव्यवस्था का संकट हल होने के बजाय और बढ़ता गया। जनता हथियारबंद विरोध के रास्ते पर उतरने लगी। पीपुल्स लिबरेशन फ्रंट के नौजवान जनता के इन संघर्षों को जन क्रान्ति के रास्ते पर बढ़ा रहे थे। आखिरकार 1970 में सरकार गिर गयी और वामपंथी पार्टियों के सहयोग से श्रीमति भण्डारनायके के नेतृत्व में नयी सरकार सत्ता में आयी। इस सरकार ने डोमिनियन स्टेटस को खत्म करके श्रीलंका को एक सम्प्रभु राष्ट्र घोषित कर दिया।

अर्थव्यवस्था में भारी बदलाव किये गये। भूमी सुधार करके कृषि जमीन किसानों में बाँट दी गयी। बागानों, उद्योगों, बैंकों, बीमा कम्पनियों और दूसरे वित्तीय संस्थानों को राष्ट्र की सम्पत्ति बना दिया गया। जनता के लिए सस्ती शिक्षा, इलाज, परिवहन जैसी सुविधाओं का इन्तजाम किया गया। बेलगाम आयत पर अंकुश लगाया गया और पूँजीपतियों पर करों का बोझ बढ़ाया गया। 1973 में आये तेल संकट ने श्रीलंका का विदेशी मुद्रा भण्डार खाली कर दिया था इसके बावजूद 1975 से पहले ही आईएमएफ का सारा कर्ज चुका दिया गया।

श्रीमति भण्डारनायके की सरकार श्रीलंका की जनता के हथियारबंद विद्रोह से त्रस्त पूँजीपति वर्ग की रक्षा करने के लिए गठित सरकार थी। इसने अपनी जिम्मेदारी को बखूबी निभाया, पूँजीपति वर्ग की जड़ें मजबूत की और जनविद्रोह पर ठण्डा पानी डाला। 1977 तक इस सरकार की जरूरत पूरी हो गयी।

1977 में बनी जयवर्धने की सरकार ने सत्ता सम्हालते ही आईएमएफ का दामन थाम लिया। अमरीकी साम्राज्यवादी खेमे द्वारा प्रस्तुत नवउदारवादी नीतियों को लागू करने वाली यह दक्षिण एशिया की पहली सरकार थी।

जयवर्धने की सरकार ने नवउदारवादी नीतियों के मुताबिक अर्थव्यवस्था को विदेशी पूँजी के लिए खोल दिया, देशी-विदेशी पूँजीपतियों को करों में भारी छूट दी, आयात पर नियंत्रण ख़त्म कर दिया, कल्याणकारी योजनाओं और सब्सिडी में कटौती की। नतीजतन 1984 तक श्रीलंका को आईएमएफ से तीन बार कर्ज लेना पड़ा, जिसकी भारी कीमत श्रीलंकाई जनता को चुकानी पड़ी। वहाँ वास्तविक मजदूरी में 22 प्रतिशत की भारी गिरावट आयी, प्रतिव्यक्ति भोजन में कैलोरी की मात्रा 1500 से घटकर 1350 रह गयी, ग्रामीण बच्चों में कुपोषण 6.2 प्रतिशत से बढ़कर 9.4 प्रतिशत हो गया।

नवउदारवादी धर्मावलम्बी शासक यह जानते थे कि नयी नीतियों का जनता विरोध करेगी, इसलिए 1975 से ही बौद्ध धर्मान्धता, सिंघली श्रेष्ठतावाद और बहुसंख्यकवाद को खूब बढ़ावा दिया जा रहा था। श्रीलंका की 74 प्रतिशत आबादी सिंहली है, इनके दिमाग में यह झूठ घुसाया गया कि 11 प्रतिशत तमिल एक दिन श्रीलंका पर कब्जा कर लेंगे, तमिल गंदे और देशद्रोही हैं, वे भारत को ही अपना वतन मानते हैं। इसके अलावा मुस्लिमों और ईसाईयों को भी सिंहलियों का दुश्मन बनाया गया। इसके बावजूद श्रीलंका के मजदूर और निम्न जाति माने जानेवाले ग्रामीण सिंहली नयी नीतियों के खिलाफ जबरदस्त आन्दोलन चलाते रहे। अंततः 1983 में, जयवर्धने की सरकार ने नवउदारवाद की रक्षा के लिए श्रीलंका को गृहयुद्ध में झोंक दिया।

गृहयुद्ध और लिट्टे की आड़ में नवउदारवाद विरोधी विद्वानों, मजदूरों, किसानों का जबरदस्त दमन किया गया। इस दमन का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि हजारों गायब लोगों की माओं ने राष्ट्रीय स्तर पर अपना ऐतिहासिक संगठन खड़ा किया और अपने गायब बेटे-बेटियों के बाद वे सरकार से भिड़

गयीं। गृहयुद्ध 2009 तक चला और इस पूरे दौर में श्रीलंका के शासक नवउदारवाद के रास्ते पर बहुत आगे तक नहीं बढ़ पाये।

2009 में ही श्रीलंका के शासकों ने पहले से ज्यादा कठोर शर्तों पर आईएमएफ से 2.6 अरब डॉलर का भारी भरकम कर्ज लिया। यह बड़ा कर्ज पहले से बड़ा संकट लेकर आया। 2012 में श्रीलंका फिर भुगतान संतुलन के संकट फँस गया और अर्थव्यवस्था हिचकोले खाने लगी। एक और कर्ज लेकर इस संकट को और बड़े रूप में आने के लिए टाल दिया गया। बौद्ध धर्मान्धता, सिंघली श्रेष्ठतावाद और बहुसंख्यकवाद, तमिलों, मुस्लिमों, ईसाईयों के प्रति नफरत का जहरीला घोल फिर से सिंहलियों को पिलाया जाने लगा।

कर्ज के साथ नये-नये शर्तनामे लादकर आईएमएफ श्रीलंका की सरकारों को देशी-विदेशी पूँजी को नयी-नयी रियायतें देने के लिए मजबूर करता रहा, दूसरी ओर, जनता के भारी दबाव के चलते सरकारें जनता को दी जाने वाली सुविधाओं और सब्सिडी में बहुत ज्यादा तेजी से कटौती नहीं कर पायीं। नतीजतन 2019 में विकास दर घटकर 2.9 प्रतिशत और सरकार की आय घटकर जीडीपी का 12.6 प्रतिशत रह गयी और कर्ज बढ़कर जीडीपी के 86 प्रतिशत तक पहुँच गया। गजब तो यह कि आईएमएफ ने उसी साल श्रीलंका सरकार की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

श्रीलंका में अमरीकी साम्राज्यवाद का भू-राजनीतिक मंसूबा

अमरीका रणनीतिक रूप से श्रीलंका को अपनी “फ्री एण्ड ओपन इण्डो-पैसिफिक रीजन पॉलिसी” के अधीन एक “मिलिटरी लोजिस्टिक हब” के रूप में देखता है। संयुक्त राज्य अमरीका, जापान, ऑस्ट्रेलिया और भारत के बीच हुई इस रणनीतिक साझेदारी का उद्देश्य चीन के समुद्री क्षेत्र और सिल्क रोड पहलकदमी की चुनौती का मुकाबला करना है।

अनुमान है कि दुनिया के तेल का दो-तिहाई और सभी कंटेनर शिपमेंट का आधा हिस्सा पूर्व-पश्चिम शिपिंग मार्ग से होकर गुजरता है। यह प्रमुख शिपिंग मार्ग श्रीलंका के दक्षिणी छोर से सिर्फ 6 से 11 समुद्री मील की दूरी पर स्थित है। श्रीलंका के पूर्वी हिस्से में त्रिंकोमाली पोर्ट एक प्राकृतिक बन्दरगाह है जो दुनिया के बेहतरीन बन्दरगाहों में से एक है।

इन्ही भू-राजनीतिक स्थितियों का फायदा उठाने के लिए पेंटागन ने षडयंत्र शुरू किया तथा श्रीलंका के साथ स्टेटस ऑफ फोर्स एग्रीमेंट (एसओएफए) और अक्विजिशन एण्ड क्रॉस-सर्विसिंग एग्रीमेंट (एसीएसए) करने के लिए रास्ता साफ किया, जिसे पहले नाटो म्यूचुअल सपोर्ट एक्ट के रूप में जाना जाता था।

जैसे-जैसे श्रीलंका आईएमएफ के कर्ज जाल में फँसता गया, अमरीकी साम्राज्यवादियों ने इन समझौतों के लिए उसकी घेरेबन्दी तेज की और अपना मंसूबा पूरा करने में सफल हुए।

2019 में जब समझौतों का नवीनीकरण हुआ, तो श्रीलंकाई संसद ने पूरे दस्तावेज की समीक्षा भी नहीं की; हस्ताक्षर करने से पहले श्रीलंका के सैन्य अधिकारियों ने इसे देखा भी नहीं था। श्रीलंकाई लोगों ने इसका काफी विरोध किया, क्योंकि वे इसे अपनी सम्प्रभुता के लिए खतरा मानते थे। कोलंबो टेलीग्राफ अखबार ने इस शीर्षक से एक लेख प्रकाशित किया था-- ‘ड्राफ्ट एसओएफए-- श्रीलंका को एक सैन्य कॉलोनी में बदलने की अमरीकी योजना का इजहार है।’

नवउदारवाद है तो संकट लाजमी है

1970 के दशक में श्रीलंका के शासकों ने एक कल्याणकारी राज्य का निर्माण किया था। जन कल्याण और बेहतर जीवन के तमाम सूचकों में तीसरी दुनिया के सभी देश श्रीलंका से बहुत पीछे थे। श्रीलंका के शासक नवउदारवाद अपनाने के बावजूद जनता के भारी दबाव के चलते पुरानी कल्याणकारी नीतियों को खत्म नहीं कर पाये। इसी का सहारा लेकर नवउदारवाद समर्थक श्रीलंका के उदाहरण से यह साबित करते थे कि नवउदारवाद और जन कल्याण साथ-साथ चल सकता है।

1970 के दशक में कल्याणकारी राज्य की नीति के तहत श्रीलंका ने गैरजरूरी आयात पर अंकुश लगाया था, और आयात किये जाने वाले उपभोक्ता सामानों को देश में ही तैयार करने की कोशिश की थी। इस कदम से विदेशी मुद्रा की बचत हुई और सरकार की आय में भी बढ़ोतरी हुई। नतीजतन 1977 में श्रीलंका को विदेश व्यापार में 15 करोड़ डॉलर की बचत हुई। लेकिन नवउदारवादी आर्थिक नीति अपनाने के बाद आत्म निर्भर और जनहितकारी नीतियों को त्याग दिया गया। परिणाम यह हुआ कि कुछ ही सालों में श्रीलंका के छोटे और मझोले उद्योग बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के कारिन्दे बन गये। आयात इस कदर बेलगाम हो गया कि चारों और समुद्र से घिरा श्रीलंका मछलियों तक का आयात करने लगा। इससे सालाना व्यापार घाटा बढ़कर 8 अरब डॉलर तक पहुँच गया। सरकार की आय और विदेशी मुद्रा भण्डार सिकुड़ते गये जिसकी पूर्ति के लिए बार-बार कठोर शर्तों पर विदेशी कर्ज लेना पड़ा।

गृहयुद्ध की समाप्ति के बाद श्रीलंका में सेवा क्षेत्र का बेलगाम विस्तार हुआ। जल्द ही पर्यटन विदेशी मुद्रा आय और अर्थव्यवस्था का प्रमुख क्षेत्र बन गया। इससे अर्थव्यवस्था की स्थिरता कमजोर हुई और जब कोरोना महामारी के चलते पर्यटन

बन्द हो गया तो पूरी अर्थव्यवस्था रसातल की ओर बढ़ चली।

कल तक लोग लोक कल्याण के मामले में श्रीलंका की मिसाल देने वाले नवउदारवाद के पैरोकार अब अर्थव्यवस्था की तबाही का दोष सरकार की कल्याणकारी नीतियों के मत्थे मढ़ रहे हैं जबकि तमाम तथ्य साफतौर पर बता रहे हैं कि नवउदारवादी नीतियों ने ही श्रीलंका को दिवालिया किया है। नवउदारवाद की नीतियाँ खुद स्पष्ट कर देती हैं कि इसका निर्माण देशी-विदेशी पूँजीपतियों के गठजोड़ के हाथों जनता के निर्मम शोषण के लिए ही किया गया है। यह एक जनविरोधी और ढाँचागत संकट की ओर धकेलने वाली साम्राज्यवाद परस्त नीति है। मूलरूप से यह पूँजीपतियों को हर तरह की छूट देने और उनके निर्मम शोषण की शिकार जनता पर करों का भारी बोझ लादने और उसकी सुविधाओं को खत्म करने वाली नीति है। जनता पर कहर ढाने वाली नवउदारवादी नीतियाँ जनता में घोर असंतोष पैदा करती हैं जिससे बचने के लिए उसे लागू करनेवाली सरकारें धर्मान्धता, नस्लवाद, अधिनायकवाद जैसी मध्ययुगीन अलोकतांत्रिक मूल्यों को बढ़ावा देती हैं और उस लोकतंत्र तथा राष्ट्र को ही दाँव पर लगा देती हैं जिसे खुद पूँजीपति वर्ग ने निर्मित किया था।

नवउदारवाद को अपनाने वाली अर्थव्यवस्था कभी भी संकट से मुक्त नहीं हो सकती। जो आज श्रीलंका के साथ हुआ है वही पहले ग्रीस जैसे समृद्ध यूरोपीय देश समेत बहुत से देशों के साथ हो चुका है और बहुत से देशों में उसकी आहट सुनायी दे रही है। नवउदारवाद से मुक्ति पाकर ही इस असमाधेय ढाँचागत संकट से मुक्ति पायी जा सकती है। आज की दुनिया में यह एक चुनौतीपूर्ण कार्य है, लेकिन इसके अलावा कोई और रास्ता भी नहीं है।

पाठकों से अपील

- **'देश-विदेश' अंक 41 आपके हाथ में है। हमारा प्रयास है कि इसे अनियतकालीन पत्रिका की जगह हर तीन माह पर नियमित प्रकाशित किया जाये।**
- **जिन साथियों को पत्रिका निरन्तर डाक से भेजी जा रही है, वे कृपया सूचित करें कि उन्हें पत्रिका मिल रही है या नहीं और उन्हें आगे से भेजी जाये या नहीं।**
- **देश-विदेश अव्यवसायिक पत्रिका है। यह साथियों के श्रम और सहयोग से ही प्रकाशित होती है। आर्थिक संकट से जूझते हुए अब तक हमने 41 अंक निकाले। पाठकों के सहयोग से ही यह सम्भव हो पाया।**
- **पत्रिका अभी भी अनियमित है, इसलिए नियमित चन्दे की दर तय करना सम्भव नहीं। डाक से मँगवाने के लिए 4 अंकों की सहयोग राशि 200 रुपये या आजीवन सदस्यता न्यूनतम 2000 रुपये निम्नलिखित बैंक खाते में अन्तरित करें और इसकी सूचना एसएमएस या ईमेल से भेज दें।**

नाम : मोहित कुमार
मोबाइल नं. 8755762077
AC. No.&& 30456084252
IFSC&& SBIN0002292
स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया (एसबीआई),
एलम, शामली, उत्तर प्रदेश

मनी ऑर्डर भेजने का पता है-

अतुल कुमार गुप्ता
1/4649/45 बी, गली नं. 4,
न्यू मॉर्डन शाहदरा
दिल्ली- 110032

ये मौसमे गुल गरचे, तरब खेज बहुत है....

(अर्थव्यवस्था की तबाही, बेरोजगारी और मजदूरों की बर्बादी के समय अमृत महोत्सव का खटराग)

-- अमित इकबाल

कोरोना महामारी की तीन लहर गुजर जाने के बाद भारत सरकार हमें राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के पटरी पर आने का शुभ सन्देश दे चुकी हैं। यानी अर्थव्यवस्था की स्थिति अब कमोबेश कोरोना-पूर्व हालत में पहुँच चुकी है, मानो पतझड़ के बाद बसन्त आ गया हो। 'आजादी का अमृत महोत्सव' भी शायद इसी वसंत के उन्माद का आनन्द लेने के लिए शुरू किया गया है। जिस पर अरबों रुपये खर्च करके पूरे साल में करीब 20 हजार कार्यक्रम किये जायेंगे। इस महोत्सव की जायज वजहें हैं। जीडीपी नाममात्र ही सही लेकिन बढ़ी है। शेयर भले ही कुलांचे न भर रहा हो पर आगे बढ़ रहा है। सट्टेबाजों ओर अरबपतियों की दौलत में खूब बढ़ोतरी हो रही है। जनता की सम्पत्ति बेरोकटोक नीलाम हो रही है। सबसे अच्छी बात है कि कंगाल जनता हर चोट को लगभग ख़ामोशी से बर्दाश्त करती जा रही है। उत्सवों के उन्माद में डूबने का इससे अच्छा मौका शासकों को और कब मिलेगा।

कोरोना महामारी के चलते जब भारत के करोड़ों मेहनतकश सड़कों पर खदेड़े जा रहे थे। जब जनता दवाई ओर ऑक्सीजन की कमी से मर रही थी, जब शमशानों में जगह नहीं थी ओर नदियों में लाशें तैर रही थीं उसी समय अरबपतियों की दौलत में बेहिसाब बढ़ोतरी हो रही थी। ठीक उसी साल भारत सरकार हथियार खरीद पर सबसे ज्यादा खर्च करने वाले देशों में अमरीका के बाद दूसरे नम्बर पर आ गयी थी। जाहिर है कि देश दो बेहद बेमेल खेमों में बँटा है-- एक में सरकार और उसके चहेते अरबपति, सट्टेबाज, धन्नासेठ हैं तो दूसरे खेमे में सवा अरब मेहनतकश जनता। ऐसा हो ही नहीं सकता कि जीडीपी और शेयर बाजार के सूचकांक जिन्हें चढ़ते देखकर सरकार ओर अरबपति खुश होते हैं वे देश की जनता की हालत बयान कर दें। देश की जनता का हजारों करोड़ चुराकर भाग जाने वाला ललित मोदी आज विश्व सुन्दरी के साथ विदेशों में गुलछर्रे उड़ा रहा है, दूसरी ओर कुछ हजार का कर्ज न चुका पाने के चलते देश के किसानों, मजदूरों को आत्महत्या के लिए मजबूर होना पड़ रहा है-- दोनों का बसन्त एक नहीं हो सकता।

'गायर अदम गोंडवी ने कहा है कि तुम्हारी फाइलों में गाँव का मौसम गुलाबी है ये आँकड़े झूठे हैं, ये दावा किताबी है।

आँकड़े भारत की जनता और सरकार के रवैये के बारे में क्या कहते हैं इस पर पत्रकार रुक्मिणी एस ने अपनी किताब 'होल नम्बर एण्ड हाफ ट्रुथ' में विस्तार से चर्चा की है। इस किताब में साफ साफ बताया गया है कि जो आँकड़े जनता के हालात को बयान करते हैं, सरकार उन्हें जनता के सामने आने से रोकती है या उन्हें झूठा साबित करती है।

रोजगार, स्वास्थ्य और जीवनस्तर से जुड़े तथ्य ही जनता की जिन्दगी और देश की अर्थव्यवस्था की सही तस्वीर सामने लाते हैं। शेयर बाजार की तेजी और जीडीपी की बढ़ोतरी किसी भी अर्थव्यवस्था की अच्छी सेहत की गारण्टी नहीं होती। 2015 में जब विश्व बैंक तथा दूसरी अन्तरराष्ट्रीय संस्थाओं ने भारत में गरीबी दर घटने की घोषणा की, तब क्रय क्षमता के पैमाने के अनुसार एक डॉलर को 15 रुपये के बराबर माना गया था जबकि बाजार में एक डॉलर 67 रुपये के बराबर था। इस पैमाने पर भारत के केवल 5 प्रतिशत लोग ही गरीब पाये गये। यह आँकड़ों की धोखाधड़ी थी। अगर कम क्षमता को आधार बनाया गया था तो भारत में भी गरीबी का वही स्तर माना जाना चाहिए था जो अमरीका में है। इस आधार पर भारत की 50 प्रतिशत आबादी गरीबी रेखा से नीचे आती थी, जैसी वास्तव में थी। असलियत यह है कि भारतीय नागरिक अपने ऊपर औसतन केवल 2500 रुपये मासिक खर्च करने की हालत में हैं। यह महामारी के पहले की तस्वीर है। अनुमान करना मुश्किल नहीं है कि पिछले दो सालों में भारी संख्या में रोजगार उजड़ने के चलते क्या लोग इतने रुपये भी अपने ऊपर खर्च करने की स्थिति में रहे हैं? यह आँकड़ा सरकारी राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण दफ्तर ने जारी किया है। इसके विपरीत, खुद प्रधानमन्त्री भारत में मोटर साइकिल और गाड़ियों की बिक्री में इजाफा का किस्सा

सुनाकर देश की जनता को अमीर साबित करने पर तुले हुए हैं। 2011-12 की तुलना में 2017-18 के दौरान गरीबी बढ़ने की दर में वृद्धि हुई थी, सभी जानते हैं कि सरकार ने बहुत आनाकानी और आँकड़ों का हेरफेर करने के बाद राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण की इस रिपोर्ट को छपने दिया। जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय के अध्यापक हिमांशु के अनुसार इस दौरान गरीबी की दर 30 प्रतिशत का आँकड़ा पार कर चुकी है।

करोड़ों भारतीयों को गरीबी के दलदल में धकेल दिये जाने के चलते ही भारत में अरबपतियों की संख्या में वृद्धि होती है। 2012 में भारत में कुल अरबपति 55 थे, 2019 में बढ़कर 102 और 2022 में 166 हो गये हैं। विश्व बैंक के अध्ययन बताते हैं कि एक प्रतिशत महँगाई बढ़ने के चलते एक करोड़ लोग गरीबी रेखा के नीचे चले जाते हैं और उनकी बरबादी की कीमत पर अरबपतियों की संख्या में भारी इजाफा होता है।

अर्थव्यवस्था की मजबूती के चाहे जितने ढोल पीटे जा रहे हों लेकिन सच्चाई यह है कि भारत की आम जनता की थाली से रोटी गायब होती जा रही है। भारत के सबसे गरीब ग्रामीण लोग हर महीने बस 870 रुपये और सबसे गरीब शहरी लोग केवल 1,325 रुपये कमाते हैं। यह उनकी कुल कमाई है जिसमें आवास, भोजन, इलाज सब खर्चे शामिल हैं। यह तथ्य भी राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के है। यही तथ्य बताते हैं कि 2011-12 के बाद से भारत के ग्रामीण और शहरी भारत के लोगों के उपभोग खर्च में भारी कमी आयी है। भुखमरी की स्थिति है। इससे पहले 1960 से 1966 के दौरान ऐसा हुआ था, जब भारत चीन से युद्ध हारा था ओर देश में खाद्यान्न संकट आ गया था। पिछले दस सालों में कांग्रेस और भाजपा के राज में विकास दर भले ही 6 प्रतिशत से ज्यादा रही हो, लेकिन इस विकास दर का जनता की बेहतरी से कोई खास वास्ता नहीं है। कमाल की बात यह है कि उपभोग खर्च में कमी की वजह बताने के बजाय सरकार ने इस आँकड़े को नकार दिया है।

खाते-पीते मुट्ठीभर लोग हर रोज प्रचार करते हैं कि भारत के मजदूर काम नहीं करते। नये श्रम कानून भी कहते हैं कि हर मजदूर को अब 8 की जगह 12 घण्टे काम करना जरूरी है। लेकिन इस कानून के लागू होने से पहले ही रिपोर्टें बता चुकी हैं कि भारत के मजदूर दुनिया में सबसे बुरे हालात में सबसे ज्यादा घण्टे तक काम करने वाले मजदूरों में शामिल हैं।

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण अपने आँकड़ों में रेहड़ी, ठेला लगाने वालों, कूड़ा बीनने वालों, रिक्शा वालों, चौराहों पर नींबू-मिर्ची बेचने वालों को भी रोजगारशुदा की श्रेणी में शामिल करके रोजगार सृजन की गुलाबी तस्वीर पेश करने की कोशिश करता है, लेकिन हकीकत बहुत डरावनी है। यूपीए के जमाने में ही गठित सेनगुप्ता आयोग ने 2007 में अपनी रिपोर्ट में बताया था कि 77 प्रतिशत भारतीय रोजाना 20 रुपये से कम पर गुजारा करते हैं। आज 15 साल बाद स्थिति इससे बेहतर नहीं बल्कि बहुत ज्यादा बदतर हो चुकी है। 2004-12 के दौरान सालाना 75 लाख रोजगार का सृजन हो रहा था जबकि 2013-19 के दौरान सालाना केवल 29 लाख रोजगार सृजन हुआ है।

अलग-अलग भर्तियों के लिए किये गये आवेदनों की संख्या से सरकारी आँकड़ों की तुलना में बेरोजगारी की ज्यादा साफ तस्वीर पता चलती है। 2019 में रेलवे विभाग ने अलग-अलग पदों के लिए 1 लाख 27 हजार पदों का विज्ञापन जारी किया था जिसके लिए करीब ढाई करोड़ युवाओं ने आवेदन किया था और इनमे माँगी गयी योग्यता से ज्यादा डिग्री धारकों की संख्या बहुत ज्यादा थी। विस्तार से जानने के लिए इसी अंक में प्रकाशित माया जॉन का लेख-- 'बेरोजगार भारत का युग' देखें।

जाहिर है यह किसी देश की रोजगारशुदा युवाओं की गुलाबी तस्वीर नहीं बल्कि रोजगार के अभाव में कुछ भी करने को तैयार युवा समुदाय की तस्वीर है। इन्हीं के विद्रोह को रोकने के लिए कभी काँवड़ यात्रा तो कभी मंदिर-मस्जिद या इस्लामी आतंक या बंगलादेशी घुसपैठिये का भूत दिखाया जाता है।

2019 में किये गये सर्वेक्षण के अनुसार युवा भारत या मिलेनियल (23 से 38 साल उम्र के नौजवान) देश के 80 प्रतिशत चाहते हैं कि सरकार उनके लिए सरकारी रोजगार का सृजन करे। लेकिन सरकार युवाओं को पकौड़ा तलने की नसीहत देकर केवल अपमानित कर सकती है।

2014 में बनी मोदी सरकार ने बेरोजगारी का कारण युवाओं में कुशलता की कमी बताया था और बहुत शोर-शराबे के साथ स्किल इण्डिया योजना शुरू की थी। वास्तव में यह योजना पूँजीपतियों को मुफ्त के मजदूर और उन्हें कुशल बनाने के नाम पर मोटी रकम देने की योजना थी। 2017 में सरकारी रिपोर्ट के जरिये ही पता चला था कि इस योजना के तहत बाँटे गये कर्ज का ज्यादातर हिस्सा पूँजीपति मार कर बैठ गये हैं। अब सरकार यह भी दावा कर रही है कि सेना में 'अग्निपथ' योजना के तहत 4 साल के ठेके के दौरान युवाओं को कौशल सिखाया जायेगा। नौकरी देने के बजाय नौजवानों को कौशल विकास का झुनझुना पकड़ाया जा रहा है। भारत में निजी सुरक्षा का 57 हजार करोड़ का बाजार है जिसे सस्ते मजदूर के रूप में हथियार का प्रशिक्षण प्राप्त नौजवानों की जरूरत है। इसलिए फिक्की, सीआईआई समेत पूँजीपतियों के तमाम संगठनों ने इस योजना का स्वागत किया है।

नयी शिक्षा नीति 2020 भी इसी कौशल विकास का एक

नया औजार है जिसके जरिये 12 वीं करने के बाद 4 साल की स्नातक डिग्री के लिए दाखिला लेना बेहद मुश्किल होगा और उन्हें बीच में ही छोड़ने का रास्ता भी खुला रहेगा। एक, दो, तीन साल की पढ़ाई पूरी करने पर सर्टिफिकेट, डिप्लोमा या एडवांस्ड डिप्लोमा देकर नौजवानों को चलता कर दिया जायेगा। यानी गरीब के बच्चों के लिए रोजगार ही नहीं बल्कि शिक्षा के दरवाजे भी कानूनी रूप से बन्द किये जा रहे हैं। एक तरफ एक-दो साल की अधूरी पढ़ाई और दूसरी तरफ उनकी हड्डी निचोड़ने के लिए चार मजदूर विरोधी श्रम संहिता लागू करके सरकार ने राष्ट्र के भविष्य (छात्र) को कंगाल करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। हालत यह हो गयी है कि राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण की रिपोर्ट से ही स्पष्ट होता है कि निराशा के चलते करोड़ों नौजवान नौकरी तलाश करना ही छोड़ चुके हैं।

देश भयावह महँगाई के दौर से गुजर रहा है। सरकार अन्तरराष्ट्रीय स्थिति पर इसका ठीकरा फोड़ रही है। सवाल यह है कि उदारीकरण-वैश्वीकरण-निजीकरण की नीति के जरिये देशी बाजार को विदेशियों के हाथों में देने और अन्तरराष्ट्रीय बाजार से जोड़ने का काम भी तो सरकारों ने ही किया था। आयात प्रतिस्थापन नीति को तिलांजलि देकर निर्यात आधारित नीति अपनायी गयी और जरूरी उपभोग सामानों और पेट्रोल डीजल जैसी जरूरी लागतों की कीमतों को सीधे अन्तरराष्ट्रीय बाजार के उतार-चढ़ाव के हवाले कर दिया था जो इस महँगाई का एक बड़ा कारण है। इन्हीं नीतियों के चलते कीमतों को सरकारी नियन्त्रण से मुक्त करके सीधे मुनाफाखोर पूँजीपतियों के हवाले कर दिया गया जो आज लागतों की कीमतें बढ़ाकर भरपूर मुनाफा कमा रहे हैं। खाद्यान्न की अन्तरराष्ट्रीय कीमतों में उछाल निजी निर्यातकों को दूसरे देशों में अनाज निर्यात करने के लिए प्रोत्साहित कर रही है जिसके चलते स्वाभाविक रूप से खाद्यान्न की कीमतों में तेजी से उछाल आ रहा है और मेहनतकश जनता की थाली में अन्न की मात्रा घटती जा रही है। आज जब जनता भूखों मर रही है तब भी सरकार क्या उदारीकरण, वैश्वीकरण ओर निजीकरण की नीतियों को बन्द करना चाहती है, बिलकुल नहीं, उलटे वह इन्हें और ज्यादा तेजी से लागू कर रही है ताकि पूँजीपति ज्यादा से ज्यादा मुनाफा लूट सकें।

कोरोना महामारी आने से पहले ही भारतीय अर्थव्यवस्था मन्दी की चपेट में आ चुकी थी। सरकार ने इसको छुपाने की बहुत कोशिशें की लेकिन सरकारी कार्रवाई ने ही इसे उजागर किया है। नोटबन्दी, जीएसटी आदि लागू करने और कॉर्पोरेट घरानों को टैक्स में भारी छूट देने के पीछे सरकार की मंशा थी कि इससे निवेशक प्रोत्साहित होंगे। लेकिन मन्दी के लक्षण दिखने पर उन्होंने अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने के लिए उत्पादन क्षेत्र में निवेश नहीं किया, बल्कि सट्टा बाजार या ऐसी ही दूसरी जगहों पर निवेश किया जहाँ मुनाफे की दर ज्यादा थी।

मन्दी के भँवर से निकलने के लिए जरूरी है कि सरकार एक झटके में अन्दरूनी बाजार की माँग बढ़ा दे और देश की उत्पादन क्षमता को पूरी तरह इस्तेमाल करने की कोशिश करे। सरकार इसके ठीक उलट काम कर रही है, सार्वजानिक सम्पत्तियों को हर साल कौड़ियों के मोल देशी-विदेशी निजी कम्पनियों के हाथों बेच रही है। रोजगार के साधन लगातार कम कर रही है। महँगाई बढ़ाकर जनता के उपभोग को कम कर रही है ताकि आयात कम करके डॉलर बचा सके।

इन कदमों को सही ठहराने के लिए सरकार और उसके पिछलग्गू जी-जान लगा रहे हैं। निजी कम्पनियों के बीच प्रतियोगिता, निजीकरण, सबकुछ बाजार के हवाले करने के फायदे गिनवा रहे हैं। 2018 में केन्द्र सरकार ने मजदूरों की न्यूनतम मजदूरी 2 रुपये बढ़ाकर 178 रुपये रोजाना कर दी थी। 178 रुपये में पूरे परिवार का खर्च चलाने के क्या-क्या फायदे हैं इसके बारे में सरकार और उसके पिछलग्गुओं ने कभी नहीं बताया।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार कोरोना महामारी के दौरान भारत में 48 लाख लोगों की मौत हुई और भारत सरकार के अनुसार यह संख्या लगभग 5 लाख 25 हजार है। दूसरी लहर के दौरान प्रयाग में बहती लाशें जैसे सिर्फ सरकार को बदनाम करने के लिए बह रही थीं। लेकिन सरकार चाहे कुछ भी दावा करे कोरोना महामारी ने भारत में जनस्वास्थ्य सेवा की नंगी तस्वीर सबके सामने पेश कर दी है। यहाँ हर 10 हजार लोगों के लिए केवल 6 अस्पताल का बेड, 28 स्वास्थ्य कर्मचारी (जिसमें डॉक्टर भी शामिल हैं) उपलब्ध हैं जो विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार न्यूनतम से भी दो गुना कम है। साधारण बीमारी बन चुकी टीबी का इलाज उपलब्ध होने के बावजूद भारत में रोज 11 हजार मरीज टीबी से मरते हैं। फिर कोरोना से मौत के आँकड़ों की सच्चाई पर भला कोई सन्देह रह जाता है?

निजी अस्पतालों में इलाज देश की अधिकांश जनता की हैसियत से बाहर की चीज है। खाने की तरह ही रोजगार जितना कम होता है स्वास्थ्य सेवा में खर्च का अनुपात उतना ही बढ़ जाता है। सबसे गरीब 30 प्रतिशत आबादी की कुल आमदनी का करीब 12 प्रतिशत इसी मद में खर्च होता है। 2019 में पब्लिक हेल्थ फाउण्डेशन ऑफ इण्डिया की रिपोर्ट के अनुसार 5.5 करोड़ भारतीय एक साल में इलाज के खर्च के चलते कंगाल हो गये थे। इन्हें इलाज के खर्च का 80 प्रतिशत कहीं न कहीं से कर्ज लेना पड़ा। महामारी के बाद स्थिति और ज्यादा गम्भीर हो गयी है। पिउ

रिसर्च सेण्टर के अनुसार महामारी के चलते भारत के 3.2 करोड़ लोग जो विश्व बैंक के पैमाने पर मध्यम वर्गीय थे वे कंगाल हो गये और 7.5 करोड़ लोग सड़कों पर आ गये हैं। याद रखना चाहिए कि यह स्थिति आयुष्मान भारत योजना लागू करने के बाद की है।

जब धुआँधार प्रचार के जरिये अर्थव्यवस्था की रंगीन तस्वीर पेश करने में सरकार हर बार नाकाम हो रही है तो वह मुश्किल में डालने वाले आँकड़ों को फेरबदल करने या उसे छुपाने में लग गयी है। जब 2014 में भाजपा सरकार पहली बार सत्ता में आयी थी तभी जीडीपी की विकास दर को लेकर आलोचनात्मक रुख रखने वाले समाज वैज्ञानिक सवाल करना शुरू कर चुके थे। सत्ता में आने के बाद मोदी सरकार ने नेशनल एकाउण्ट्स स्टैटिस्टिक्स की गणना पद्धति, राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के आँकड़ों की गणना पद्धति, योजना आयोग को अलविदा कहकर उसकी जगह कुछ आँकड़ों के बाजीगरों को लेकर नीति आयोग बना दिया था। अपने पिछलग्गू विशेषज्ञों की सलाह पर विकास दर को नापने के लिए ग्रॉस वैल्यू एडेड (यानी सकल मूल्य वृद्धि) को विकास दर का मानक बनाया और तुलना करने के लिए पीछे के किसी साल की जगह मौजूदा साल को ही मानक बनाया। मसलन अगर हम अपने रोजगार में विकास की असली तस्वीर देखना चाहें तो आज से पाँच साल पहले आज जितनी आय में कितनी खरीदारी कर सकते थे, यह बेहतर मानक का काम करता है। एक साल पीछे की आय भी स्थिति में बदलाव तो बताती ही है। लेकिन आज की आय को आज की आय से तुलना करके बस इतना ही पता चलता है कि कुछ कमाई हुई है। इससे ज्यादा कुछ नहीं।

उदाहरण के लिए सरसों तेल की कीमत एक साल में ही 90-95 रुपये से 200 रुपये हो गयी। यानी इसकी कीमत में लगभग सौ प्रतिशत बढ़ोत्तरी हुई। लेकिन पाँच साल पहले जब इसकी कीमत 60 रुपये थी उसकी तुलना में तो 233 प्रतिशत बढ़ोतरी हुई। इसी तरह विकास दर नापने में भी अक्सर उसकी तुलना पाँच या दस साल पीछे की कीमतों के आधार पर करना पूँजीवादी अर्थशास्त्र का बेहतर पैमाना है जिसे मोदी सरकार ने त्याग दिया है।

2014 से 2018 तक इसी पैमाने से विकास दर औसत 7 प्रतिशत से ज्यादा रही। उसके बाद (2019 से 2022 तक) यह दर घटकर 3 प्रतिशत हो चुकी है। महामारी का साल यानी 2020-21 को छोड़ भी दें तो भी विकास दर आज 6 प्रतिशत है। पहले ही बता चुके हैं कि यह पैमाना अपने आप में गड़बड़झाला है।

इसकी जगह अगर कुल उत्पादन के रुख को देखें तो मामला समझने में आसानी होगी। मिनिस्ट्री ऑफ स्टेटिस्टिक्स एण्ड प्रोग्राम इम्प्लिमेन्टेशन की रिपोर्ट के अनुसार 2018-19 में सम्भव उत्पादन की तुलना में 1.18 लाख करोड़ रुपये का कम उत्पादन हुआ था। 2019-20 में 6.67 लाख करोड़ रुपये का कम उत्पादन हुआ। और 2021-22 में 28.43 लाख करोड़ रुपये कम उत्पादन हुआ। ऐसे में सरकारी नेता और बुद्धिजीवियों द्वारा रोज रोज कई बार ही अर्थव्यवस्था के पटरी पर लौटने की खबर सही नहीं हो सकती। गौर कीजिये कि लुढ़कने का सिलसिला 2018-19 में ही शुरू हो चुका था। फिर इसके लिए महामारी को जिम्मेदार ठहराने का कोई मौका ही नहीं है। पटरी पर वापसी की बात तब मानी जा सकती है अगर इस साल उत्पादन स्तर उतना ही होता जितना महामारी न आने की स्थिति में स्वाभाविक गति में चलती अर्थव्यवस्था का उत्पादन था।

भारत सरकार पर विदेशी कर्ज जीडीपी के 50 प्रतिशत से भी ज्यादा हो चुका है। कोढ़ में खाज की तरह इस साल मई और जून के महीने में विदेशी निवेशक सट्टा बाजार से अपने 94 हजार करोड़ रुपये लेकर उड़ गये हैं। बढ़ती महँगाई और बेरोजगारी दोनों ही जनता में भारी असंतोष पैदा कर रही हैं। पड़ोसी मुल्क श्रीलंका के बारे में विश्लेषण करते हुए जो दक्षिणपंथी बुद्धिजीवी वहाँ के शासक वर्ग की मूर्खता पर हँस रहे हैं, उन्हीं के पैमानों पर भारत भी बहुत सुखद स्थिति में नजर नहीं आ रहा है। स्थिति को सम्भालने के लिए बुलडोजर न्याय तथा पत्रकारों और मानव अधिकार कार्यकर्ताओं के दमन के अलावा सरकार के पास भी कोई चारा नहीं है। आर्थिक स्थिति इतनी खोखली है कि अब सेना में भर्ती होने वाले जवानों को नौकरी पर रखना और उन्हें पेंशन तथा दूसरी सुविधाएँ उपलब्ध करवाने की हैसियत भी सरकार की नहीं है। किसी अर्थव्यवस्था की अच्छी सेहत जाहिर करने वाले तमाम तथ्य भारतीय अर्थव्यवस्था से गायब है। सरकार जिस बेहतरी का ढोल पीट रही है वह केवल भाजपा नेताओं और उनके चहेते पूँजीपतियों के लिए मनमोदक है। बसन्त केवल उन्ही के लिए आया है। बाकी मेहनतकश जनता के लिए तो बुरा शीतकाल चल रहा है। मौसमों की तब्दीली नियम है निश्चय ही लुटेरों का बसन्त ज्यादा दिन नहीं टिकेगा। जनता अपना बसन्त खुद लायेगी।

बेरोजगार भारत का युग

-- माया जॉन

तथ्यों के ऐसे बहुत से सूचक मौजूद है जो भारत में रोजगार सृजन के लम्बे चौड़े वादों का खण्डन करते हैं।

रेलवे नौकरी के अभ्यर्थियों के हालिया विरोध प्रदर्शन के सामने आये दृश्यों और रिपोर्टों ने भारतीय युवाओं के बीच व्याप्त भयानक रोजगार असुरक्षा की बड़ी समस्या को उजागर कर दिया है। कोविड-19 महामारी के दौरान लगाये गये 2020-21 के लॉकडाउन के कारण हुए विशाल पलायन से पहले ही बेरोजगारी के चेतावनी भरे आँकड़े सामने आ चुके थे। महामारी से काफी पहले राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन ने 2017-18 में, 6.1 फीसदी बेरोजगारी दर चिन्हित की थी, जो कि पिछले 40 सालों में सबसे खराब थी। अप्रैल-मई 2020 के बाद के महीनों में यह तस्वीर और अधिक निराशाजनक ही साबित हुई है।

उदाहरण के लिए दिसम्बर 2021 में सेन्टर फॉर मोनिट्रिंग इण्डियन इकोनोमी (सीएमआईई) ने बताया कि करीब 5 करोड़ 30 लाख भारतीयों के पास कोई काम नहीं है, जिनमें से बड़ा हिस्सा महिलाओं का है। दिसम्बर 2021 में बेरोजगारी दर 7.9 फीसदी के आसपास मण्डरा रही थी। हालाँकि जनवरी 2022 में बेरोजगारी दर के घटने की चर्चाएँ जोरों पर रही मगर तब भी आँकड़े 6.57 फीसदी के चिंताजनक स्तर पर बने हुए थे।

दावों का भण्डाफोड़

सरकारी एजेंसियों और नीति निर्माताओं द्वारा पेश किये गये आँकड़ों और बेरोजगारी दर पर बहस हो सकती है लेकिन सबूतों के ऐसे ढेर सारे सूचक मौजूद हैं जो रोजगार सृजन के दावों का खण्डन करते हैं। ऐसा ही एक सूचक है-- पात्रता से अधिक योग्य नौजवानों में मध्य और निम्न श्रेणी की सरकारी नौकरी हासिल करने के लिए पैदा हुई इच्छा द्वारा सामने आया दबाव, जो कि अपने साधारण वेतन के बावजूद मिलने वाली रोजगार सुरक्षा के कारण उनकी पसन्द बन गयी है। जैसा कि उम्मीद थी रेलवे भर्ती बोर्ड द्वारा 35 हजार पदों के लिए निकाले गये विज्ञापन के बाद सवा करोड़ आवेदन आये। इनमें पोस्टग्रेजुएट डिग्री धारक काफी बड़ी संख्या में थे। इस परिघटना ने उन छात्रों के बीच भारी असुरक्षा पैदा कर दी जो न्यूनतम योग्यता रखते हैं लेकिन उच्च शिक्षा प्राप्त छात्रों के साथ प्रतियोगिता करने को मजबूर कर दिये गये हैं।

बहुत से जरूरी पदों के काम बाहर से करवाये जाने और ठेकेदारी प्रथा के प्रचलन से कम हो रही सरकारी नौकरियों की विभिन्न श्रेणियों में भयानक प्रतियोगिता जन्म ले चुकी है जिसकी एक मिसाल रेलवे के हालिया भर्ती विवाद में सामने आयी। जैसा कि रेलवे भर्ती बोर्ड और रेल मंत्री ने बताया कि जिस दूसरे स्तर की परीक्षा के चलते विरोध भड़क उठा, उसके छोटे से बड़े स्तर तक के पदों के आवेदकों की भारी संख्या ने बोर्ड को मजबूर कर दिया कि वह हर स्तर की परीक्षा के लिए 20 गुना अभ्यर्थियों को सूचीबद्ध करें।

इस बात से हैरानी होती है कि निम्न श्रेणी की मुट्ठी भर सरकारी नौकरियों का विज्ञापन भी बड़ी संख्या में आवेदकों को लुभाता है। सितम्बर 2021 में प्रकाशित एक खबर के अनुसार हिमाचल प्रदेश सचिवालय में चपरासी, माली आदि के 42 पदों के के लिए 18000 आवेदन आये, जिनमें से सैकड़ों डॉक्टरेट की डिग्री धारक थे और कई सारे पोस्ट ग्रेजुएट। इससे पहले मार्च 2021 में पानीपत जिला अदालत में चपरासी के 13 पदों के लिए 27000 से अधिक बीए, बीएससी, एमएससी, एमकॉम, इंजीनियरिंग जैसे डिग्री धारकों ने आवेदन किये। इसी तरह अगस्त 2018 में यूपी पुलिस में अर्दली के 62 पदों के लिए कुल 97000 आवेदन आये, जिनमें से 3700 पीएचडी डिग्री धारक और 50,000 ग्रेजुएट थे। इस पद के लिए केवल पाँचवी तक पढ़ाई और 'साइकिल चलाने की योग्यता के लिए एक स्वघोषित प्रमाण पत्र ही चयन का मापदण्ड था।

सरकारी नौकरी के लिए इस भयानक संघर्ष का कारण निसन्देह व्यापक रोजगार असुरक्षा (भर्ती करो और निकालो की सरल प्रक्रिया), तुच्छ वेतन और काम के अधिक घण्टों में निहित है, जो कुल मिलाकर निजी क्षेत्र की नौकरियों की खासियतें हैं। ऐतिहासिक रूप से मालिक-मजदूर सम्बन्धों में बहुत थोड़े ऐसे हैं और वह भी ज्यादातर संगठित क्षेत्र से सम्बन्धित हैं जो राज्य द्वारा विनियमित हैं। हालाँकि हाल के कुछ दशकों में संगठित क्षेत्र में भी पूँजी-श्रम सम्बन्धों के राज्य द्वारा विनियमन में लगातार कमी देखने को मिली है। विनियमन की यह कमी सार्वजनिक क्षेत्र के तेजी से जारी निजीकरण के साथ जुड़ी हुई है। एक साथ घटित हो रहे ये सभी बदलाव कुशल और अकुशल श्रमिकों के बीच सामयिक बेरोजगारी को जन्म देते हैं और रोजगार बाजार में शामिल होने वाले नये लोगों के लिए बाधा खड़ी करते हैं।

काबू से बाहर होता प्रभाव

इस पूरी प्रक्रिया से कई स्तर का फर्क पैदा होता है। एक स्तर पर संगठित क्षेत्र में मालिक-मजदूर के कार्य सम्बन्धों का लगातार घटता विनियमन अतिकुशल श्रमिकों की 'आवधिक बेरोजगारी' को बढ़ा देता है, जिसका परिणाम असंगठित क्षेत्र के कम कुशलता के रोजगारों में भीड़ बढ़ जाने के रूप में सामने आता है। इसी तरह, भारत के रोजगार बाजार में मध्य और उच्च श्रेणी की पेशेवर नौकरियों में आवधिक बेरोजगारी बढ़ जाने का परिणाम यह निकलता है कि अधिक योग्य युवा आबादी निम्न श्रेणी की सरकारी नौकरियों की तरफ जाने को मजबूर हो जाती है।

यह प्रवृत्ति अपने आप में उन लोगों के लिए एक गहरा संकट खड़ा कर देती है जो निम्न शैक्षिक योग्यता के सहारे छोटी सरकारी नौकरियों के लिए संघर्षरत होते हैं और जिनके लिए पारम्परिक रूप से माना जाता है कि वे ऐसी नौकरियाँ ही करेंगे।

शिक्षा, स्वास्थ्य सहित अन्य सभी सामाजिक क्षेत्रों में राज्य द्वारा किया जाने वाला खर्च घटने से रोजगार कम पैदा हो रहे हैं, जबकि तथ्य यह है कि सार्वजनिक सुविधाओं की माँग लगातार बढ़ रही है। एक ऐसे देश के लिए जिसकी शैक्षिक जरूरतें बढ़ रही हैं, खास तौर से उनके लिए जो शिक्षा से खुले रास्ते के जरिये अपनी पुश्तैनी गरीबी से निकलने की कोशिश में है, सरकारी विद्यालयों और विश्वविद्यालयों की कमी हमें चेता रही है।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र को करीब से देखने पर हम पाते हैं कि आवेदक छात्रों की संख्या में लगातार इजाफा हो रहा है। यह परिस्थिति स्वाभाविक रूप से मौजूदा उच्च शिक्षा संस्थानों के विस्तार और नये सार्वजनिक अनुदान प्राप्त उच्च शिक्षा संस्थानों के निर्माण के जरिये और अधिक योग्य शिक्षकों की भर्ती की माँग पैदा करती है। हालाँकि आने वाली हर सरकार ने सार्वजनिक अनुदान प्राप्त उच्च शिक्षा संस्थानों में नये अध्यापकों की भर्ती को अटकाने के साथ-साथ उस पर रोक लगाने के काम को जारी रखा है। मिसाल के लिए, किसी बड़े सार्वजनिक अनुदान प्राप्त विश्वविद्यालय, जैसे कि दिल्ली विश्वविद्यालय में सालों से भर्ती संकट गहराता जा रहा है, जिसके चलते 4500 शिक्षकों के पद अस्थायी शिक्षकों से भरने पड़े हैं और स्थायी शिक्षकों की भर्ती का काम लगातार टाला जा रहा है।

योग्यता के अधिकार का विरोध

भर्तियों का यह संकट शैक्षिक पदों के मद की दूसरी किस्त की मंजूरी में बेतुकी देरी का परिणाम है, जो अन्य पिछड़े वर्गों के आरक्षण को लागू करने के परिणामस्वरूप पैदा हुई संस्थानों के विस्तार की माँग से जुड़ा है। ऐसे विश्वविद्यालयों को पूरी तरह तबाह करने के लिए लगातार एक ऐसा उपाय किया जा रहा है जिसमें बेहद कुशल अध्यापकों की भारी संख्या गम्भीर असुरक्षा के माहौल में ठेके पर नौकरी करने के लिए मजबूर है जबकि और अधिक योग्य नये अभ्यर्थी लगातार रोजगार बाजार में प्रवेश कर रहे हैं। इस लगातार बढ़ती प्रतियोगिता का एक विवादास्पद परिणाम यह निकलता है कि सरकार सार्वजनिक शिक्षण संस्थानों में प्रवेश-स्तर की शैक्षिक नौकरियों के लिए ऊँची से ऊँची योग्यता निर्धारित करती चली जाती है।

इसी तरह, अपेक्षाकृत अच्छे वेतन वाली सरकारी नौकरियों के लिए जरूरी योग्यता में मनमानी वृद्धि कर देना और साथ ही साथ पेशेवर संस्थानों में प्रवेश के लिए नयी शर्तें लगाना बढ़ती रोजगार असुरक्षा और बेरोजगारी का एक अन्य सूचक है। यह रुझान केवल सार्वजनिक संस्थानों में ही सामने नहीं आ रहा है जिनमें प्रवेश-स्तर के शैक्षिक पदों के लिए मास्टर डिग्री और यूजीसी-नेट की पात्रता के साथ-साथ पीएचडी डिग्री को अनिवार्य कर दिया गया है। यह अत्यधिक प्रचलित शैक्षिक डिग्रियों जैसे चिकित्सा में 'नीट' और स्कूलों में शिक्षक की नौकरी के लिए आवश्यक सीटेट जैसी केन्द्रीकृत परीक्षा जैसी आम प्रवेश परीक्षाओं की बाधाओं के बावजूद भी सच है। जिस प्रकार सीटों और रिक्त पदों की संख्या में बढ़ोतरी रोक दी गयी है हम देख रहे हैं कि मनमानी योग्यताएँ और परीक्षाएँ गढ़कर निर्मम तरीके से परीक्षार्थियों को बाहर करने के व्यवस्थित प्रयास किये जा रहे हैं।

बेरोजगारी की भयानक पीड़ा में दिन काटते अति योग्य लोगों को ध्यान में रखकर सोचें तो 'स्किल इंडिया' जैसे अभियान खोखले लगते हैं। भयानक बेरोजगारी के परिणामस्वरूप हमें युवाओं के कुण्ठा और विरोध की और अधिक घटनाएँ देखने को मिलेंगी। बड़ी संख्या वाली शिक्षित महत्त्वाकांक्षी युवा आबादी को ध्यान में रखते हुए अर्थव्यवस्था के प्रचलित तर्क से परे जाकर सोचना ही वह निर्णायक बिन्दु है जिसके आगे बेरोजगारी मुक्त दुनिया की परिकल्पना की जा सकती है। यह एक अर्थव्यवस्था है जो कुछ लोगों से क्षमता से अधिक काम करवाती है जबकि बड़ी संख्या में लोग बेकार घूमते रहते हैं। काम से थका हुआ भारत और बेरोजगार भारत आज एक ही सिक्के के दो पहलू बन गये हैं। नौजवानों को भी यह एहसास करना ही होगा कि उनका सम्मानजनक रोजगार पाने का सपना अलगाव में रहकर पूरा नहीं हो सकता बल्कि उनका यह सपना उनके चारों ओर की भयानक शोषित आबादी की बुनियादी जरूरतों जैसे शिक्षा, चिकित्सा और आजीविका तक पहुँच से भी जुड़ा है। बदलती हुई परिस्थितियाँ आज नयी तरह की संवेदनशीलता और एकजुटता की भावना के इन्तजार में है।

माया जॉन एक श्रम इतिहासकार हैं और दिल्ली विश्वविद्यालय में सहायक प्रोफेसर हैं।

(साभार-- द हिन्दू, 28 मार्च 2022)

अनुवाद-- विशाल

अग्निपथ योजना : नौजवानों की बर्बादी पर उद्योगपतियों को मालामाल करने की कवायद

-- मोहित पुण्डीर

14 जून 2022 को भारत सरकार ने सेना में भर्ती की प्रक्रिया में एक बड़ा बदलाव करते हुए 'अग्निपथ' नामक योजना की घोषणा की है। इस योजना से भर्ती होने वाले नौजवानों को सरकार ने 'अग्निवीर' नाम दिया है। नोटबन्दी, जीएसटी और कृषि कानून के समय जिस तरह के झूठे दावे सरकार की तरफ से किये गये थे, कुछ ऐसे ही दावे इस योजना को लेकर भी किये जा रहे हैं। रक्षा मंत्री राजनाथ सिंह ने योजना की घोषणा करते हुए कहा कि इससे नौजवानों को तो भरपूर लाभ मिलेगा ही साथ ही देश की अर्थव्यवस्था में भी सुधार होगा और देश विकास की नयी मंजिल में पहुँच जाएगा। लेकिन यह विकास किसका होगा और किसकी कीमत पर होगा यह बात रक्षा मंत्री ने नहीं बतायी। खैर, देश के नौजवानों को यह समझने में देर नहीं लगी कि इस योजना से उनका विकास नहीं होगा, बल्कि उनका भविष्य बर्बाद हो जायेगा। इसलिए योजना के सार्वजनिक होते ही देश के अलग-अलग हिस्सों में आक्रोशित नौजवान इसके विरोध में सड़कों पर उतर आये। अपने साथ हुए इस धोखे के खिलाफ नौजवानों ने संघर्ष का रास्ता अपना लिया। बिहार, राजस्थान, उत्तर प्रदेश समेत अनेक राज्यों में स्वतःस्फूर्त आन्दोलन तेजी से शुरू हुए।

कितनी ही जगह आन्दोलन में शामिल नौजवान पुलिस अफसरों के सामने इस योजना से आहत होकर रोते हुए नजर आ रहे हैं। लेकिन सरकार को इन नौजवानों की संवेदनाओं से कोई लेना-देना नहीं है। सरकार की तरफ से यह साफ कहा गया कि इस योजना को किसी भी कीमत पर वापस नहीं लिया जाएगा। साथ ही सरकार ने इस योजना का विरोध करने वाले नौजवानों पर कार्रवाई करने के आदेश दे दिये हैं। अब इन नौजवानों पर आँसू गैस के गोले दागे जा रहे हैं, लाठीचार्ज कर गिरफ्तारी तक की जा रही है। सरकार की उपेक्षा और दमन के कारण कई जगह विरोध-प्रदर्शन उग्र हो गये। सरकार से गुस्साये नौजवानों ने बिहार में भाजपा दफ्तर पर हमले तक किये, साथ ही कितनी ही जगह ट्रेनें और बसें जलाने की खबर भी आयी। नौजवानों द्वारा की गयी इन कार्रवाइयों का बहाना बनाकर सरकार इस पूरे आन्दोलन को तोड़ने और कुचलने को आतुर हो गयी। अनेक शहरों में कर्फ्यू लगा दिया गया, आन्दोलन में शामिल नौजवानों पर एफआईआर की गयी। लेकिन इतने दमन के बाद भी आन्दोलन का बड़ा हिस्सा अहिंसात्मक बना रहा।

आखिर इस योजना में ऐसा क्या है जिससे नौजवान इतने आक्रोशित और अपने भविष्य को लेकर भयभीत नजर आ रहे हैं? दरअसल, इस योजना के तहत सरकार ने सेना में ठेका प्रथा की शुरुआत कर दी है। अब सेना के तीनों अंगों थल सेना, वायु सेना, और नौ सेना में क्रमशः जवानों, ऐयरमैन और नाविकों के लिए भर्ती होने वाले नौजवानों का कार्यकाल केवल 4 साल का होगा। 4 साल बाद इनमें से 25 फीसदी तक नौजवान ही आगे नौकरी कर पाएँगे, बाकी सबकी नौकरी समाप्त कर दी जाएगी। नौकरी समाप्त होने के बाद पूर्व में सैनिकों को मिलने वाली हर सुविधा से उन्हें बाहर कर दिया गया है। उन्हें न तो किसी किस्म की पेंशन और न ही मेडिकल और कैंटीन सुविधाएँ मिलेंगी। एक सैनिक की नौकरी बेहद कठिनाइयों से भरी होती है, संवेदनशील इलाकों में हमेशा उनकी जान को खतरा बना रहता है। फिर भी वह अपनी जान की परवाह किये बिना उस तनावग्रस्त माहौल में महीनों अपने परिवार से दूर रहता है। उसके इस त्याग और समर्पण के बदले सरकार उसे और उसके परिवार को जीवन भर कुछ जरूरी सुविधाएँ देती थी। लेकिन खुद को देशभक्त कहने वाली सरकार ने अब सैनिकों से उनके ये अधिकार भी छीन लिये हैं। मोदी ने सत्ता में आने से पहले 'वन रैंक, वन पेंशन' की योजना लागू करने का वादा किया था। लेकिन 2014 के बाद इसी माँग पर आन्दोलन करने वाले भूतपूर्व सैनिकों और अफसरों पर मोदी सरकार ने लाठी चार्ज तक करवाया था। अब इस नयी योजना से मोदी सरकार ने 'नो रैंक, नो पेंशन' लागू कर दिया है।

इस नयी योजना से सरकार ने पिछली भर्तियों में चयनित नौजवानों को भी धोखा दिया है। दरअसल, पिछले 2 साल से सेना में सरकार ने कोई नयी भर्ती नहीं की है। आखिरी बार 2020 में सरकार ने लगभग 50 भर्ती रैलियों का आयोजन किया था, जिनमें

डेढ़ लाख नौजवानों का चयन हुआ था। इन नौजवानों ने 4-5 साल की कड़ी मेहनत और सुबह-शाम दौड़ में खुद को तपाकर तैयारी की थी। फिजिकल और मेडिकल परीक्षा पास करने के दो साल बाद भी ये नौजवान लिखित परीक्षा के इन्तजार में दर-दर की ठोकरें खाने को मजबूर हो रहे हैं। पिछले 2 सालों से यह केवल आश्वासनों के भरोसे समय काट रहे थे। लेकिन अब सरकार ने इन्हें पूरी तरह से नजरअन्दाज कर दिया और 'अग्निपथ' योजना के कारण इनकी भर्तियों को अमान्य घोषित कर दिया गया है। इस फैसले के बाद कुछ नौजवान इतने आहात हुए कि उन्होंने आत्महत्या कर ली, लेकिन सरकार को उनके दुःख से कोई लेना-देना नहीं है।

इस योजना के प्रति नौजवानों का गुस्सा देख सरकार उन्हें बहलाने-फुसलाने का भी पूरा प्रयास कर रही है। सरकार इस बात का ढोल जोर-शोर से पीट रही है कि वह 4 साल बाद नौकरी से निकाले गये नौजवानों को कर मुक्त 11 लाख रुपये देगी। लेकिन सच्चाई यह है कि इन पैसों में आधे पैसे सैनिकों की तनख्वाह से काटकर ही जमा किये जाएँगे। साथ ही नौजवानों का कहना है कि वे 11 लाख रुपये का क्या करेंगे? उससे वे अपना घर तक नहीं बना सकते हैं। उन्होंने बिना शर्त पुरानी योजना को बहाल करने का नारा दिया है। भाजपा इस योजना को लेकर सैनिकों की औसत उम्र घटाने का भी तर्क दे रही है। उनका कहना है कम उम्र के सैनिक होने से सेना की क्षमता बढ़ेगी। लेकिन सरकार का यह तर्क हास्यास्पद है। भारतीय सेना में मिलने वाला सर्वश्रेष्ठ वीरता का पुरस्कार, परमवीर चक्र 21 बार से ज्यादा 30 साल से ऊपर के सैनिकों को मिला है। बल्कि इस योजना से सेना में कम अनुभवी और कम प्रशिक्षित सैनिकों की भरमार होगी जिससे औसत क्षमता बढ़ने की जगह घट जाएगी। सरकार नौजवानों को इस योजना के पक्ष में सहमत करने में असफल नजर आ रही है।

आखिर क्या वजह है कि देश में इतने विरोध के बाद भी सरकार इस योजना को लागू करने पर इतनी आमादा है? एक तरफ जहाँ सेना में जाने की तैयारी करने वाले सभी नौजवान इस योजना का पुरजोर विरोध कर रहें है, वहीं दूसरी ओर, देश के उद्योगपतियों के सबसे बड़े संगठन फिक्की ने इसका समर्थन किया है। इस समर्थन के क्या मायने हैं? इस योजना को सही परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए इसमें निहित उद्योगपतियों के स्वार्थों की जाँच-पड़ताल करना बेहद आवश्यक है। साथ ही इस योजना से देश की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था पर पड़ने वाले दूरगामी दुष्प्रभावों को भी हमें समझना होगा।

मोदी ने सत्ता में आते ही 'मिनिमम गवर्नमेण्ट, मैक्सिमम गवर्नेंस' के नारे के साथ विनिवेश की प्रक्रिया को तेज कर दिया था। देश की मेहनतकश जनता ने जिन महत्वपूर्ण संस्थाओं और सरकारी उद्यमों को खड़ा करने में अपना खून-पसीना लगाया हुआ है, आज मोदी सरकार उन्हें कौड़ियों के भाव अम्बानी-अडानी जैसे बड़े उद्योगपतियों को बेच रही है। इसके चलते इन पूँजीपतियों के कब्जे में देश के महत्वपूर्ण एयरपोर्ट और बन्दरगाह, हर प्रकार की खनिज की खदानें और रेलवे स्टेशन आते जा रहे हैं। इन सभी संस्थाओं का निजी हाथों में जाने से इनमें काम करने वाले सभी स्थाई कर्मचारियों को अस्थायी बनाकर उनके सभी अधिकार छीन लिए जाएँगे। यह उद्योग आम जनता को सस्ती ऊर्जा, यातायात के सस्ते साधन और अन्य मूलभूत सुविधाएँ प्रदान करती हैं, लेकिन इनके निजी हाथों में जाने के बाद इन पर कुछ उद्योगपतियों का एकाधिकार होता जा रहा है। इससे एक तरफ जनता को मिलने वाली मूलभूत सुविधाएँ खत्म होती जा रही हैं, तो दूसरी तरफ इनमें काम करने वाले कर्मचारियों को मिलनेवाली सुविधाएँ भी खत्म हो रही हैं। इसलिए इनमें काम करने वाले कर्मचारी लम्बे समय से आन्दोलन कर रहे हैं।

इन सभी संस्थाओं और उपक्रमों में उद्योगपतियों को बड़ी संख्या में सुरक्षाकर्मियों की जरूरत है, जो इनकी सम्पत्ति और कल-कारखानों की सुरक्षा कर सकें और साथ ही जरूरत पड़ने पर मजदूरों के आन्दोलन को कुचल सकें। इन्हें फिलहाल इस काम के लिए 'केन्द्रीय सुरक्षा बल' मुख्यतः सीआरपीएफ पर निर्भर रहना पड़ता है। इस काम के बदले इन्हें सरकारी पैमाने के अनुसार न्यूनतम तनख्वाह और साथ ही उनकी पेंशन, मेडिकल और अन्य सुविधाओं के लिए भी फण्ड देना होता है। उद्योगपति अपने मुनाफे को और अधिक बढ़ाने की हवस में इन सुरक्षाकर्मियों पर खर्च होने वाले थोड़े से पैसे भी अब देने के लिए तैयार नहीं है। इन उद्योगपतियों को बेहद सस्ते, प्रशिक्षित और अनुशासित सुरक्षाकर्मियों की जरूरत है। अगर प्रशिक्षण देने का काम पूँजीपति खुद करे तो उसे इस काम के लिए बहुत पूँजी लगानी पड़ेगी। लेकिन सरकार ने 'अग्निपथ' योजना से इनकी इस परेशानी को हल कर दिया है। सरकार जनता के पैसों से 4 साल तक 'अग्निवीरों' को ट्रेनिंग देगी और इस ट्रेनिंग का लाभ किसी भी तरीके से देश सेवा में या फिर देश की सुरक्षा में नहीं मिल पाएगा। 4 साल बाद सेना से निकलने वाले नौजवान पहले से भयंकर बेरोजगारी में किसी तरह अपनी जिन्दगी चलाने के लिए बेहद खराब शर्तों पर भी इनके यहाँ काम करने को मजबूर हो जायेंगे। ऐसे में उद्योगपतियों की निर्भरता 'केन्द्रीय सुरक्षा बल' पर खत्म हो जाएगी। सम्भव है कि सरकार इनकी नयी भर्तियों पर धीरे-धीरे रोक लगाकर इसे खत्म ही कर दे। इसकी झलक हमें देखने को मिल भी रही है। गृह मंत्रालय के आँकड़े के अनुसार पिछले 4 सालों में 'केन्द्रीय सुरक्षा बल' की कुल

भर्ती में 80 प्रतिशत की गिरावट आयी है। 2017 में 58 हजार भर्तियाँ हुई थीं, वहीं 2020 में केवल 10 हजार भर्तियाँ हुई हैं। यानी 1 लाख 20 हजार से ज्यादा पद पहले से खाली हैं। इसी तरह अर्ध-सैनिक बलों के 73 हजार से ज्यादा पद अभी भी खाली हैं। इन तथ्यों से उल्टा सरकार यह वादा कर रही है कि 4 साल बाद अग्निवीरों को इनमें 10 फीसदी का आरक्षण दिया जाएगा। जब सरकार आने वाले समय में 'केन्द्रीय सुरक्षा बल' को ही खत्म कर देगी तो उसमें अग्निवीरों के आरक्षण का तो सवाल ही नहीं उठता है। इस योजना से एक तरफ तो 'केन्द्रीय सुरक्षा बल' धीरे-धीरे खत्म हो जाएगी और उस में काम करने वाले हजारों लोगों की सुविधाओं में भारी कटौती की जायेगी। वहीं दूसरी ओर, अपनी जिन्दगी के सुनहरे समय को दाँव पर लगाकर दिन-रात दौड़ भाग करके सेना की तैयारी करने वाले नौजवान अब गार्ड की अदना-सी नौकरी करने के लिए मजबूर होंगे।

बात केवल सैनिकों के ठेकाकरण तक सीमित नहीं है बल्कि भाजपा पूरी सेना के निजीकरण की तरफ बढ़ रही है। इन उद्योगपतियों की गिद्ध नजर सेना की अकूत सम्पत्ति पर भी है। दरअसल, सेना के पास रेलवे से भी अधिक सम्पत्ति है, जिसमें 16 लाख एकड़ जमीन देशभर में फैली 62 छावनी से बाहर है। यह जमीन सैनिकों के लिए आवास, उनके परिवार वालों के लिए सैनिक अस्पताल, स्कूल, कैण्टीन आदि खोलने के लिए आरक्षित है। लेकिन इस योजना के बाद जब सभी सुविधाएँ छीन ली जायेंगी तो यह जमीन किस काम आएगी? इस जमीन को भी बेहद सस्ते में उद्योगपतियों को देने की तैयारी चल रही है। इसी काम के लिए अभी हाल ही में सरकार ने 'ड्रोन इमेजरी' सर्वेक्षण तकनीक के माध्यम से इस जमीन का सर्वेक्षण भी करवाया है। सेना से जुड़ी बाकी सरकारी संस्थाओं का भी निजीकरण किया जा रहा है। सेना की 'बेस वर्कशॉप' जिनमें सेना के वाहन और हथियारों की मरम्मत की जाती है, उनका संचालन अब निजी कम्पनियाँ करेंगी। इनमें काम करने वाले कर्मचारियों को जबरदस्ती सेवा-निवृत्त होने का दबाव बनाया जा रहा है। साथ ही 2021 में रक्षा मंत्रालय ने सेना के लिए सभी जरूरतों का सामान बनाने वाली ऑर्डिनेंस फैक्ट्री बोर्ड आईएफबी को भी भंग कर दिया है। अब इन कम्पनियों को सेना से काम मिलेगा इस बात की कोई गारण्टी नहीं है। इस पूरे सरकारी तंत्र को इसलिए बर्बाद किया जा रहा है ताकि अडानी उन पर कब्जा करके अरबों का मुनाफा कमा सके। सेना के आधुनिकीकरण का यही मतलब है।

भारत की अर्थव्यवस्था आज अभूतपूर्व आर्थिक मन्दी के दौर से गुजर रही है। बेहिसाब बढ़ती महँगाई और बेरोजगारी हर समय इस बात की गवाही दे रही है। ऐसे समय में पूँजीपतियों के मुनाफे की दर में कमी आना लाजमी है। इसी कमी की भरपाई के लिए आज जनता के खून की एक-एक बूँद को मुनाफे में तब्दील किया जा रहा है। 1990 के बाद से भारत नयी आर्थिक नीतियों पर चल रहा है। इन नीतियों का मतलब है आम जनता को मिलने वाली सभी कल्याणकारी योजनाओं का अन्त, देश की सारी सम्पदा और दौलत पूँजीपतियों की और सारा संकट जनता का। पिछले 30 साल से कांग्रेस भी इन्हीं नीतियों को लागू कर रही थी। लेकिन पहले से कही अधिक गहराते आर्थिक संकट ने इस प्रक्रिया को तेज कर दिया है। मोदी ने सत्ता में आते ही सबसे बड़ा हमला मजदूरों पर किया था और पिछले साल उन्हें मंजिल तक पहुँचाते हुए 4 श्रम संहिताएँ लागू भी कर दी हैं। ये श्रम संहिताएँ स्थायी रोजगार की जगह अस्थायी रोजगार का रास्ता साफ करती हैं। इससे पूँजीपति बेहद कम पैसों में कितने ही समय मजदूरों से काम ले सकेंगे और जरूरत न रहने पर उन्हें बाहर कर सकेंगे। अग्निपथ योजना भी इसी उद्देश्य के लिए है। भारत का रक्षा क्षेत्र बेहद विशाल है, अब तक यह पूँजीपतियों की पहुँच से दूर था। लेकिन पूँजीपतियों के मैनेजर के बतौर काम करने वाली सरकार अब लाखों लोगों को बर्बाद कर यह क्षेत्र भी पूँजीपतियों की मुनाफे की हवस को शान्त करने के लिए दे रही है। सरकार पूँजीपतियों की सेवा में इतनी अन्धी हो गयी है कि वह देश में व्याप्त आक्रोश को भी नजरन्दाज कर रही है। पहले से अभूतपूर्व बेरोजगारी अब और बढ़ेगी जिससे निश्चित ही बाजार में मन्दी और विकराल रूप लेगी। आज जनता तबाह-बरबाद हो रही है और सब्र किये बैठी है, लेकिन यह भी सच है कि जब जनता के सब्र का बाँध टूटता है तो उसमें बड़े-बड़े शासक बह जाते हैं।

जर्मन कवि मार्टिन नीमोलर की कविता

पहले वे आये कम्युनिस्टों के लिए,
और मैं कुछ नहीं बोला
क्योकि मैं कम्युनिस्ट नहीं था।
फिर वे आये ट्रेड यूनियन वालों के लिए,
और मैं कुछ नहीं बोला
क्योकि मैं ट्रेड यूनियनिस्ट नहीं था।
फिर वे आये यहूदियों के लिए,
मैं कुछ नहीं बोला
क्योकि मैं यहूदी नहीं था।
फिर वे मेरे लिए आये,
और तब तक कोई बचा ही नहीं था,
जो मेरे लिए बोलता।

जलवायु परिवर्तन के चलते लू के थपेड़ों से आयी दुनिया की सामत

-- अमरपाल

1992 ब्राजील के रियो दी जनेरियो में हुए पृथ्वी सम्मेलन में फिदेल कास्त्रो ने कहा था कि “कल बहुत देर हो जायेगी” जो कि हो गयी है। अब गलतियाँ दोहराने का वक्त नहीं है। बल्कि दुनिया के सभी देशों की सरकारों को और वहाँ की जागरूक जनता को जलवायु परिवर्तन को यानी पृथ्वी बचाने वाले मुद्दे को अपने सबसे प्राथमिक मुद्दों में शामिल करना होगा। इसमें देरी करना अब विनाश को निमन्त्रण देने जैसा होगा।

जलवायु परिवर्तन का असर दुनिया के हर क्षेत्र पर है। जल, जंगल, जमीन, ग्लेशियर, कृषि, पशु, स्वास्थ, रोजगार, अपराध, भुखमरी, जीव-जन्तु, वनस्पति कुछ भी इससे अछूता नहीं है। हम मानते हैं कि जलवायु परिवर्तन हमारी ऊर्जा की माँग का परिणाम है, लेकिन वास्तव में यह मुख्यतः साम्राज्यवाद के मुनाफे की हवस का परिणाम है। जीवाश्म ईंधन, कोयला, तेल और प्राकृतिक गैस के जलने और अन्य उपयोग के साधनों से निकलने वाली खतरनाक गैसों के उत्सर्जन की वजह से आज दुनिया विनाश के कगार पर खड़ी है। इण्टर गवर्नमेण्टल पैनल ऑफ क्लाइमेट चेंज (आईपीपीसी) की 2022 की रिपोर्ट ने एक बार फिर से आगाह किया है कि जलवायु परिवर्तन के प्रभाव विनाशकारी होंगे।

लेकिन यहाँ हम हीट वेव (गर्म लू) के चलते पृथ्वी किस तरह से विनाश की तरफ बढ़ रही है, इस पर और दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में हो रहे इसके दुष्परिणामों पर बात करेंगे।

आखिर, हीट वेव क्या है? जब किसी जगह का तापमान पहाड़ी क्षेत्रों में 30 डिग्री, तटीय क्षेत्रों में 37 डिग्री और मैदानी क्षेत्रों में 40 डिग्री सेल्सियस पार कर जाये जहाँ सामान्य तापमान की तुलना में 4.5 डिग्री से 6.4 डिग्री सेल्सियस अधिक तापमान बढ़ जाता है, उसे हीट वेव कहते हैं। तापमान 47 डिग्री से अधिक हो जाने पर गम्भीर हीट वेव की घोषणा की जाती है।

इस साल 21 मार्च को अण्टार्कटिका और आर्कटिक दोनों ही जगह दिन-रात बराबर थे। बस अन्तर मौसम बदलने का था, अण्टार्कटिका में सर्दी का मौसम आ रहा था और आर्कटिक में गर्मी का मौसम आ रहा था। लेकिन इस समय दोनों ही जगह पर रिकार्ड तोड़ हीट वेव (गर्म हवा/लू) चली जो अधिकतम तापमान से 30 डिग्री ज्यादा थी। अण्टार्कटिका में हीट वेव चलने की वजह से अस्ट्रेलिया के दक्षिण-पूर्व में बर्फ के पठार के बीच वोस्तोक में पारा -17.7 डिग्री तक पहुँच गया, यानी वहाँ -32.6 डिग्री सेल्सियस के पिछले रिकॉर्ड से 15 डिग्री अधिक तापमान दर्ज किया गया। इटैलियन-फ्रेंच रिसर्च स्टेशन कॉनकॉर्डिया जो ऊँचे बर्फीले पठार पर मौजूद है, यहाँ भी मार्च में औसत से 40 डिग्री अधिक तापमान दर्ज किया गया। इसी तरह नार्वे के स्वालबार्ड का तापमान भी रिकॉर्ड तोड़ 21.7 डिग्री हो गया, जिसकी 30 डिग्री सेल्सियस तक पहुँचने की आशंका है।

बर्फीले साइबेरिया के जोवोरोवो जहाँ जून के महीने में तापमान 16 डिग्री सेल्सियस रहता है, वहाँ तापमान 43 डिग्री सेल्सियस तक पहुँच गया है। यहाँ काफी वक्त से हीट वेव बनी हुई है, वैज्ञानिक इस पर हैरान हैं। इस तरह अण्टार्कटिका, आर्कटिका और अलास्का से लेकर बर्फीली साइबेरिया और दूसरे भागों में तापमान की बढ़ोतरी ने खतरा पैदा कर दिया है जिसका असर दुनिया पर पड़ रहा है।

अमरीका, कनाडा से लेकर अफ्रीका, यूरोप, रूस, चीन, भारत और पाकिस्तान तक हीट वेव के चलते लोग भीषण गर्मी, जगलों में आग और सूखे से बेहाल हैं।

अमरीका के अलास्का और कैलीफोर्निया समेत कई हिस्सों में भीषण गर्मी पड़ रही है। इस गर्मी के चलते ही जंगलों का 7 लाख एकड़ क्षेत्र आग की चपेट में आ गया है। इस आग के कारण ही 11 करोड़ लोग भीषण गर्मी का सामना कर रहे हैं। कनाडा में भी रिकार्ड तोड़ 35 डिग्री तापमान पहुँच गया है। दूसरी तरफ यूरोप में भी गर्मी का कहर जारी है। ब्रिटेन और फ्रांस में रेड अलर्ट जारी कर लेवल चार वार्निंग दी गयी है। यह तभी जारी की जाती है जब अधिक हीट वेव (लू) के चलते मानसिक और शरीरिक स्वास्थ्य को बड़ा नुकसान होने का खतरा बढ़ जाता है।

पुर्तगाल में गर्मी से लगी आग ने 12-15 हजार हेक्टेयर जमीन को नुकसान पहुँचाया है तथा कई लोग मारे गये हैं और

घायल हुए हैं। इसी तरह स्पेन में 22 हजार हेक्टेयर जंगल जल चुके हैं तो इटली में हीट वेव के चलते इसकी सबसे बड़ी पो नदी में 85 फीसदी पानी सूख गया है। यहाँ सूखे के चलते आपातकाल लागू है जो एक साल तक जारी रह सकता है। यही स्थिति जर्मनी और चेक गणराज्य की है। इस तरह एक-तिहाई यूरोप अब तक के सबसे भीषण सूखे से जूझ रहा है।

चीन में भी हीट वेव के चलते तापमान 40-42 डिग्री सेल्सियस पहुँच गया है जिसके कारण चीन को अपने यहाँ 68 जिलों में रेड अलर्ट जारी करना पड़ा। दक्षिण एशिया के दो सबसे बड़े देश भारत और पाकिस्तान में भी हीट वेव के चलते भीषण गर्मी ने 122 साल पुराने रिकार्ड को तोड़ दिया है। पाकिस्तान के कई इलाकों में तो तापमान 50 डिग्री से भी ऊपर चला गया था। इसके चलते मार्च-अप्रैल 2022 के इन दो महीनों में भारत-पाकिस्तान में 90 लोगों की जानें चली गयीं। भारत मौसम विज्ञान विभाग (आईएमडी) के आँकड़ों का सीएसई ने विश्लेषण किया और बताया कि भारत में 11 मार्च 2022 से शुरू हुई हीट वेव ने 15 राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों को 24 अप्रैल तक प्रभावित किया। इस अवधि के दौरान 25 दिन भीषण हीट वेव (गर्म लू) चली, जो मई और जून में भी चलती है। इसका सीधा असर भारत के कृषि उत्पादन और स्वास्थ्य पर पड़ा है।

भारत में हीट वेव के चलते मार्च-अप्रैल के महीने में गेहूँ, चना, सरसों, इसबगोल, जीरा और अरण्डी जैसी फसलों के लिए जहाँ तापमान 30 से 32 डिग्री सेल्सियस होता था, वहाँ इस बार 38 से 40 डिग्री सेल्सियस तक पहुँच गया। इसके चलते फसलों को भारी नुकसान पहुँचा। जहाँ गेहूँ, चना और सरसों की फसलें तेज गर्मी के चलते फसल चक्र पूरा नहीं होने के कारण समय से पहले पक गयीं। नतीजा दाने छोटे रहे और उत्पादन कम रहा, जबकि इसबगोल, जीरा और अरण्डी की फसल भीषण तेज गर्म लू के चलते झुलस गयी। जलवायु परिवर्तन और वैश्विक तापमान का संकट स्थिति को और विकराल बना सकता है। यह वनस्पति क्षरण, जल अपरदन, वायु अपरदन और भूक्षरण का सबसे बड़ा कारण है, जो हमारे देश में बहुत तेजी से हो रहा है। जंगलों का कटना, बारिश के कारण बाढ़ से मिट्टी का कटकर बहना, कृषि योग्य भूमि का बंजर होना, हीट वेव के चलते मिट्टी का क्षरण होना, जबरदस्त खनन के जरिये पहाड़ों का गायब होना जिसके चलते राजस्थान, महाराष्ट्र और गुजरात में देश की करीब 50 प्रतिशत भूमि मरुस्थलीकरण से गुजर रही है। झारखण्ड में सर्वाधिक 68.77 प्रतिशत भूमि क्षरित हो चुकी है, जबकि 62 प्रतिशत क्षरित भूमि के साथ राजस्थान दूसरे नम्बर पर है।

कॉर्नेल विश्वविद्यालय के शोध के अनुसार तापमान में वृद्धि के चलते यानी हीट वेव के चलते सदी के अन्त तक दुनियाँ में मवेशियों के दुग्ध उत्पादन, वजन और प्रजनन क्षमता में 25 प्रतिशत तक गिरावट आ सकती है। वही भारत में डेयरी व मीट उत्पादन में 45 प्रतिशत की गिरावट आ जायेगी।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार हीट वेव ने 1998 से 2017 तक 1 लाख 66 हजार से अधिक लोगों की जान ली है, इसके कारण हृदय से सम्बन्धित रोगों में बढ़ोतरी होती है। रोगों के जीवाणु बढ़ते हैं और साथ ही इन रोग के जीवाणुओं की अलग प्रजातियाँ भी जन्म लेती हैं। यूनान के एथेंस शहर की हीट वेव की प्रमुख एलेनि मायरिविली का मानना है कि “उच्च तापमान पर ब्लड सर्कुलेशन निष्क्रिय हो जाता है और वह विभिन्न अंगों के कामकाजों को प्रभावित करता है। रात के समय उच्च तापमान का मतलब नींद की कमी और थकान है जिससे कार्यस्थल पर दुर्घटनाएँ होती हैं।”

‘क्लाइमेट चेंज 2011ः द फिजिकल साइंस बेसिस’ के अनुसार दुनिया की 33 प्रतिशत आबादी पहले से ही अत्यधिक गर्मी का सामना कर रही है। 2100 तक यह आँकड़ा 48 से 76 प्रतिशत आबादी तक बढ़ सकता है।

इस तरह हम देख सकते हैं कि जलवायु परिवर्तन की वजह से हीट वेव ने आज दुनिया को एक गम्भीर संकट में डाल दिया है। वजह साफ है-- वैश्विक तापमान में इजाफे को औद्योगीकरण के पूर्व के स्तर पर लाने यानी 1.5 या 2 डिग्री सेल्सियस पर सीमित करने के पेरिस समझौते के लक्ष्य को हासिल करने के लिए जिस स्तर पर ग्रीन हाउस गैस के उत्सर्जन में कमी लाना है, उसके मुकाबले जो प्रयास हो रहे है वे बहुत कम हैं। अगर साल 2022 में लागू की गयी मौजूदा नीति को मजबूत नहीं किया गया तो साल 2100 तक वैश्विक तापमान में 3.2 डिग्री सेल्सियस तक इजाफा तय है। मिनिस्ट्री ऑफ अर्थ साइंसेस (पृथ्वी विज्ञान मन्त्रालय) की एक रिपोर्ट में हीट वेव को लेकर बताया गया है कि 2040 से 2069 के बीच हीट वेव की घटनाएँ ढाई गुना बढ़ जायेंगी और 2070 से 2099 तक ये तीन गुना बढ़ जायेंगी।

वैज्ञानिकों की इन रिपोर्टों से हम अन्दाजा लगा सकते है कि जब 1.9 डिग्री सेल्सियस तापमान पर हीट वेव के चलते दुनिया इतने बड़े संकट से गुजर रही है। एक-एक साल तक हीट वेव के चलते रेड अलर्ट जारी करना पड़ रहा है, जंगलों की आग बुझ नहीं रही है, नदियों का पानी सूख रहा है, ग्लेशियर असामान्य तरीके से पिघल रहे हैं, फसलें झुलस रही हैं, खाने का संकट बढ़ रहा है। हीट वेव अगर इससे तीन गुना बढ़ जायेगी, तब हमारा और हमारी पृथ्वी का क्या होगा? क्या जीवन बच पायेगा? आज सभी प्रकृति और मानवता प्रेमी, जागरूक और जिम्मेदार लोगों के लिए यह एक बड़ा सवाल है।

खामोश हो रहे अफगानी सुर

-- प्रो. कृष्ण कुमार रत्तू

वतन इश्के तूं इछतेखारम

उपरोक्त फारसी गीत का अर्थ है, “अपने प्यारे देश पर मुझे मान है।” 1970 के दशक में जब फारसी भाषा-भारत के सुप्रसिद्ध गायक अब्दुल वहाब मदादी ने इसे लिखा तो एक उत्कृष्ट रचना के तौर पर पूरे देश में गाया जाता था। पर अब पिछले दो दशकों से स्थिति पूरी तरह बदल गयी है। इन दिनों फिर तालिबानी हकूमत ने अफगानिस्तान के सुर, साज, गीत-संगीत पर पाबन्दी लगा दी है। फतवाबन्दी के चलते अब तक 40 से ज्यादा प्रसिद्ध लोक-गायकों और संगीतकारों को गोली से उड़ा दिया गया है। यह विरासत को दफनाना नहीं तो और भला क्या है!

यह वही धरती है जहाँ सूफीयों और सूफी संगीतकारों ने कभी सदियों पहले शान्ति और अमन का सुर छेड़ा था। आज वहाँ पर जो हश्र संगीत का है, वह किसी भी सभ्य समाज की कल्पना से परे है। ये दिल को दहला देने वाला मंजर है। पिछले दिनों पश्तो और फारसी गजल गायक को जिस तरह बेइज्जत करके शरे-मैदान गोली मारी गयी, वह जालिमाना वीडियो देखकर आप परेशान हो सकते हैं। इसे पूरी दुनिया ने देखा है।

हमारे इतिहास और परम्परा विरासत में गीत, संगीत और सुरों को ईश्वर की देन और उसकी आवाज माना गया है। अमन का पैगाम इन सुरों के माध्यम से ही पूरी दुनिया में पहुँचा है, लेकिन अब अफगानिस्तान में तालिबानी शासन इसका विनाश कर रहा है। आज सैंकड़ों अफगान पश्तो और फारसी लेखक, गीतकार, संगीतकार और गायक पेशावर, पाकिस्तान में शरण लेकर अपने संगीत के हुनर और अपने साजों को बचाकर परम्परागत पश्तून संगीत और अफगान सुरों की हिफाजत कर रहे हैं।

पिछले दिनों अफगानिस्तान में गीत-संगीत के प्रसिद्ध कलाकारों को चुन-चुन कर मार डाला गया है। यहाँ तक कि फिल्मसाज भी अपनी जान बचाकर भाग रहे हैं। महिला गायकों की स्थिति तो और भी खराब है। निम्न लाइनों से आप इसका अन्दाजा लगा सकते हैं, जो अफगानिस्तान से देश निकाला सहते हुए गीतकार ने लिखी हैं। ईरान में शरण लेकर रह रहे अन्दगयी कहते हैं--

पंजशीर की घाटियों में

महफिलें तो इतिहास हो गयीं
मेलों और मजारों के चिराग बुझ गये
अब बारूद है पंजशीर की वादियों में
हर सड़क पर पहरा है
संगीत गायब है
सुर अदृश्य हैं
गर्दो-गुबार और बारूद की गन्ध है चहुँ ओर
मेरी हरी-भरी इस अफगान धरती के टुकड़े पर।

पिछले दिनों जिन फारसी और पश्तो गायकों को घरों से बाहर निकाल कर मैदान में गोली मारी गयी, उनमें शामिल प्रसिद्ध संगीतकारों में वे नाम भी शामिल हैं जिन्होंने पश्तो गीतों की धूम से ईरान, पाकिस्तान, उजबेकिस्तान और तजाकिस्तान से लेकर यू-ट्यूब और पूरी दुनिया में अपने परम्परागत संगीत से अपनी जगह बनायी। लोक-गायक जिसका नाम था फवाद अन्दराबी, जिसे गोली मारकर साजों समेत शरेआम जला दिया गया। एक और जान गवाँने वाले गायक संरगद के गले में तबला और दूसरे साज डालकर इलाके में घुमाया और कूनर के मैदान में गोली से उड़ा दिया। अब्दुल हक उमेरी को भी साजों समेत जला दिया गया। ये पकतीया राज्य की घटना है।

तालिबानी प्रशासन कहता है कि वे शरीया कानून के अधीन हैं जिसमें गीत-संगीत हराम हैं, लेकिन वे यह भूल जाते हैं कि इस क्षेत्र में संगीत की परम्परा सदियों से चली आ रही है। सूफी मजारों पर फारसी कलाम और पश्तो सूफी के नृत्य कार्यक्रम हजारों लोग सुनते रहे हैं। अफगानिस्तान में औरतों को टीवी पर काम करने से रोक दिया गया है। यह कैसा निजाम है जहाँ साहित्य और कलाओं को दफन किया जा रहा है।

उल्लेखनीय है कि अफगानिस्तान में संगीत की परम्परा सूफी परिपाटी से जुड़ी हुई है। समूह गायन शैलियाँ जिसमें मर्सिया, मनकासत, नोहेर और रोजेह शामिल हैं। असल में यह इस्लामी चिश्ती काबली कबीले की परम्परा का संगीत है। इसमें हारमोनियम और तबला प्रयोग किया जाता है। हेलमण्ड प्रान्त के हैरात में सूफी दरगाहों पर कई-कई रातों तक संगीत की महफिलें सजा करती

थीं। इनमें फारसी भाषा के साथ उप भाषाएँ-- लोगारी, शेमाली आदि भी शामिल रहती थीं।

अफगानिस्तान के उस्ताद गायकों में बेहद प्रभावशाली रहे मुहम्मद हुसैन सरहांग, रहीम बख्श, उस्ताद सरहांग ने पश्तो और दादरी भाषाओं में संगीत और नृत्य की ऐतिहासिक परम्परा कायम की। उस्ताद मुहम्मद हुसैन को उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ के समकालीन के रूप में भी देखा जाता है। कन्धार घाटी के उबैदुल्ला जन कन्धराई के साथ उस्ताद कासिम और उस्ताद रहीम बख्श ऐसे गायक हुए हैं, जो विभाजन से पहले भारत में भी प्रसिद्ध रहे। लेकिन सच्चाई यह भी है कि शुद्ध अफगान और दारी पश्तो शैली में उस्ताद अहमत जहीर ने इसे घर-घर पहुँचाया।

फरहाद दरिया ने 1970 में इस शैली के माध्यम से पश्तो संगीत में नयी रूह भर दी थी। इस शैली को बाद में ईरानी संगीतकार गूगोश ने जाज शैली में प्रयुक्त किया और हरदिल-अजीजी की नयी दमदार शैली को सिरे चढ़ाया। अफगानिस्तान में रैप, पॉप और शैक संगीत ने भी पैर पसारे, लेकिन यह तालिबानी हकूमत से पहले की स्थिति थी।

बीन, रबाब, सरोद, हारमोनियम और तबला, घुंघरू सब कुछ वही है, जो भारतीय उपमहाद्वीप में संगीत की पहचान है। रबाब को अफगानिस्तान में केवल शहतूत की लकड़ी से तीन तारों के साथ बनाया जाता है। घिचकी भी एक अफगान साज है। 1925 में जब रेडियो अफगानिस्तान शुरू हुआ, परबीन पहली महिला गायिका थी। 1950 से 1979 तक अफगान दारी, पश्तो और फारसी भाषाओं में संगीत की धमक पड़ोसी देशों तक सुनायी देती थी। उस्ताद दाऊद वजीरी, डॉ मुहम्मद सादिक फितरत, रहीम महरयार और हैदर सलीम प्रसिद्ध अफगानी गायकों में शामिल थे जिन्होंने संगीत की एक नयी दुनिया बसायी जो अब तालिबानी राज में खत्म हो गयी है।

वर्ष 2001 में अमरीकी हस्तक्षेप के साथ फिर एक दौर गीत, साहित्य और संगीत का शुरू हुआ जो तालिबानी शासन के दोबारा आने पर समाप्त हो गया है। वर्तमान में 40 से अधिक गायकों और संगीतकारों की अप्रत्याशित मौत के बाद अफगान संगीतकार काबुल से दूसरे शहरों में विस्थापित हो गये हैं या भूमिगत हो गये हैं।

संगीतकारों और गायकों के लिए अफगानिस्तान में अब कोई जगह नहीं है। गायक पासुन मुन्नवर के अनुसार, "हम गाना छोड़ भी दें तब भी तालिबानी प्रशासन हमें जान से मार देगा। इसलिए वतन छोड़ दिया है।" गुलाब अफरीदी का कहना है "रबाब की तारों में अब मौत का ताण्डव है।" रिकार्डिंग स्टूडियो बन्द हैं। साज जलाये जा रहे हैं। कहा जाता है कि जिस देश को बर्बाद करना हो, उसकी भाषा, संस्कृति, गीत-संगीत को हथिया लो वहाँ जिन्दगी समाप्त हो जाएगी। आज अफगान धरती पर यही सब हो रहा है।

> संगीतकारों और गायकों के लिए अब अफगानिस्तान में कोई जगह नहीं है क्योंकि वहाँ मौत का ताण्डव है। पिछले दिनों में अफगानिस्तान में गीत-संगीत के प्रसिद्ध कलाकारों को चुन-चुन कर मौत के घाट उतारा जा रहा है। औरत गायिकाओं की स्थिति और भी बदतर है। वर्तमान में 40 से ज्यादा गायकों और संगीतकारों को अप्रत्याशित रूप से शरे-मैदान गोली से उड़ा दिया गया है। अफगान कलाकार काबुल से विस्थापित हो गये हैं या छिपकर जीवन यापन कर रहे हैं। रिकार्डिंग स्टूडियों खामोश हैं। संगीतक साज जलाये जा रहे हैं। कहा जाता है कि जिस देश को खत्म करना हो, उसकी भाषा, संस्कृति, गीत-संगीत छीन लो, वहाँ जिन्दगी बर्बाद हो जाएगी। आज अफगान धरती पर यही सब घटित हो रहा है।

जिन्दगी के उल्लास का सन्देश गीतों की लय और संगीत की लहरों के बीच है। संतूर और रबाब जैसे साज जब तबले की थाप के साथ उठती स्वर लहरियाँ-- जिन्दगी के सपनों की उड़ान भरती है तो प्रकृति धरती पर उतर आती है।

एशियाई क्षेत्र की खूबसूरत धरती अफगानिस्तान पिछले कई दशकों से जिस दौर का सामना कर रही है, वह पूरी दुनिया के कलाकारों और संगीतकारों के लिए दुखद है। अफगानी कलाकारों के लिए तो बेवतनी, जिल्लत और मौत का सामना करना इसे और भी भयावह बना दे रहा है। अब यह संघर्ष मौत और जिन्दगी के बीच फँसी हुई सांस्कृतिक पहचान, भाषा, गीत-संगीत का है जो खत्म हो रहा है। साजों को जलाया जा रहा है, गायकों को गोली मारी जा रही है। "क्या दुनिया की कोई आवाज इस सुर संगीत की दुनिया को बचाने हेतु तालिबानी फतवे के विरुद्ध आवाज उठाएगी। ईरान में रहने वाले गायक और संगीतकार फियाज से जब मैंने फोन पर यह सवाल पूछा तो अपनी नयी गजल का अर्थ बताते हुए उसने कहा--

"अब धुआँ ही धुआँ है मेरे चारों ओर
अब सन्नाटा पसरा है, धान के खेत भी चुप हैं
अब बारूद है फसलों के बीजों में
मौत की फसल के बीज बो रहे हैं
हम इन दिनों अपनी
स्वर्ग जैसी धरती में"

(प्रो. कृष्ण कुमार रत्तू दूरदर्शन के पूर्व महानिदेशक रह चुके हैं। उर्मिल मोंगा ने इस लेख का पंजाबी से हिन्दी में अनुवाद किया है।)

व्यंग्य

इन दिनों कट्टर हो रहा हूँ मैं...

-- अनूप मणि त्रिपाठी

आजकल मैं बहुत हीन भावना में जी रहा हूँ। सामान्य तौर पर मैं सामान्य मनुष्य के जैसा जीवन ही जीना चाहता रहा हूँ। मगर अब देख रहा हूँ कि ऐसा सोचना भी मेरा असामान्य है। आजकल ऐसे सोचने वालों को कायर कहा जाता है। कायर ही नहीं बहुत कुछ कहा जाता है, जो यहाँ लिखा नहीं जा सकता।

कट्टर शब्द को मैं नकारात्मक मानता हूँ। मुझे लगता है कोई एक बार कट्टर बन गया तो वह इनसान तो नहीं ही रहता! अब मुझे लगता है कि मुझे अपनी सोच बदलनी पड़ेगी। पर मैं कट्टर जैसे भारी, महाप्रचलित और अतिआवश्यक शब्द को सिर्फ धर्म के साथ रखने का कट्टर विरोधी हूँ। कट्टर शब्द को सीमित न रखकर इसको व्यापक करने की जररूत है। जैसे कट्टर ईमानदार, कट्टर खूबसूरत, कट्टर ज्ञान, कट्टर दयालु, कट्टर भावुक, कट्टर मेहनती, कट्टर नेता, कट्टर प्रेमी वगैरह। वह कट्टर गोरे रंग पर मरता है। वह कट्टर बेरोजगार है। ऐसे वाक्य बोले और लिखे जाने चाहिए!

कल बाजार में एक पुराना मित्र मिला।

बोला, 'यार तुम बहुत ढीले हो!'

मैंने उससे पूछा कि फिर मुझे क्या करना चाहिए।

वह बोला, 'थोड़ा कट्टर बनो!'

मैंने उसे शुक्रिया कहा।

'किस बात के लिए!' उसने पूछा।

'आपने थोड़ा कहकर बहुत रियायत दे दी!'

वह मुस्कुराया। बोला, 'शुक्र है तुम जाग गए!'

'क्या अब जागना भी होगा!', मैंने पूछा।

वह हँसा और हाथों की उँगलियों को हिलाते हुए बोला, 'बिना जागे कट्टर नहीं बन सकते..'

'यह भी गजब है! बचपन में माँ जगाती थी, तो जवानी में घड़ी। सोचा था, अब आराम से सोऊँगा तो तुम जैसे चिंतक जागे रहे। ट्रेन में किसी सहयात्री की तरह घड़ी-घड़ी भाईसाहब कौन सा स्टेशन आया, पूछने वाले की तर्ज पर चैन से न रहने देना!' मैंने उलाहना दिया।'

'भइया अपने धर्म के हो तो जागना पड़ेगा!' उसने सर हिलाया।

'अगर मैं किसी और धर्म का होता तो!'

'तब तो कोई जरूरत नहीं थी।'

'क्यों!'

'वह तो पहले से जागे हैं!'

'अच्छा! तुम सारी खबर रखते हो! वैसे जागने का काम चौकीदार का होता है!'

'जागते तो चोर भी हैं!' उसने यह कर अपनी एक आँख दबायी।

'फिर मुझे कैसे जागना होगा!' मैंने पूछा।

'जैसे मैं जागा हूँ!' वह बोला।

अब जाकर मैंने उसे गौर से देखा। भरा हुआ चेहरा। चमकता हुआ। विज्ञापन वाली भाषा में कहूँ तो विटामिन ई, एलोविरा से युक्त खिला-खिला चेहरा। एक मैं हूँ कि जागने की वजह से मेरे आँखों के नीचे काले गड्ढे पड़ चुके हैं और यह...

'मैं काफी देर तक जागता हूँ मित्र!'

यह सुनकर वह हँसा।

'नींद सेहत के लिए बहुत जरूरी है।' उसने सुझाव दिया।

'फिर जागने की बात क्यों करते हो!'

'अरे यार जागने का मतलब वो नहीं है, जो तुम ले रहे हो!'

'फिर मैं कैसे लूँ!'

'जागने का मतलब जाग्रत अवस्था। अपनी संकृति से प्रेम। राष्ट्र के प्रति भक्ति...'

'मुझे लगता है यह सब मैं करता हूँ!'

'जागने का मतलब देशद्रोहियों पर नजर भी! खतरा बढ़ता ही जा रहा!' यह कह कर वह इधर-उधर देखने लगा।

'ये काम तो सरकार, सेना, पुलिस लोगों का है!'

'तुम हो बेवकूफ! अपने आस-पास पहचानो!'

'जल सेना के ग्यारह जवान जासूसी करते हुए पकड़े गये, जब सेना ही नहीं पहचान पा रही तो हमारे जैसा साधारण इनसान क्या पहचानेगा!'

'कपड़े से पहचानो!'

'कपड़े से कैसे पहचान होगी! सेना के जवान सब वर्दी में ही थे! मुझे कोई और काम-धंधा नहीं है क्या!' मैंने उसे झिड़का।

'तुम्हें काम-धंधे की पड़ी है! चाहे देश जल जाये! हैएँ!!!' उसने मुझे घूरा। मैं समझ चुका था यह अपनी टेक नहीं छोड़ेगा।

'तुमने तो मेरी आँखें खोल दी मित्र। देश के लिए अब मैं जागूँगा! अगली बार जब तुमसे मिलूँगा तो मैं पूरा कट्टर बन कर मिलूँगा.. शायद तुमसे भी ज्यादा! क्योंकि मैं अपने देश को सच्चा नहीं.. नहीं... कट्टर प्यार करता हूँ!!'

'यह हुई न बात!' उसने जोश में मेरे कंधे पर शाबाशी दी।

तभी उसके मोबाइल पर झम से एक संदेश आया। उसने वह संदेश दिखाया। संदेश कह रहा कि जो कट्टर है, इसे लाइक करें। उसने मोबाइल मेरी तरफ बढ़ा दिया।

'लो तुम लाइक करो!' बोला।

'मैं अभी कट्टर कहाँ हुआ!' मैं उससे बताता हूँ। उसने उसे झट से लाइक कर दिया। मैं मन मसोस कर उसके उत्साह को देखता रह गया।

'अब तो अपनी सुरक्षा की व्यवस्था भी खुद ही करनी पड़ेगी!' जाते-जाते बोला।

मैं देख रहा हूँ, जागने पर जोर कौन दे रहा! विधान सभा-संसद में जो नेता सोता है वो! मुझको अंधेरे में रखकर बीमा बेचने वाला परम मित्र ये! जाग जाऊँ पर सही रास्ता कौन बताएगा! मुझे जगाकर आराम से कौन सोएगा! अगर मैं वाकई जाग गया तो जगाने वालों के चेहरों जैसा मेरा भी चेहरा चमकदार होगा कि नहीं! पता नहीं इनको जागने पर क्या दीखता है। मुझे तो जागने पर संडास दीखता है... और सबसे बड़ी बात जागने के बाद रोशनी तो होगी न!

मैं बाजार में घूम रहा हूँ। इधर-उधर नजर घुमा रहा हूँ। देखिए, फलाँ कह रहा कि इसमें इतने प्रतिशत एक्स्ट्रा है। अलाँ कह रहा कि यह बचत नहीं महाबचत है। आज सीधे-साधे से काम नहीं चलता! अपने बिकने को लेकर ये प्रोडक्ट भी कट्टर हो गये हैं। पर मैं तो मनुष्य हूँ। मैं सोचता हूँ। मुझे क्या बेचना है, क्या खरीदना है! मेरे कट्टर होने से क्या भला होना है! किसका भला होना है! अगर होना है तो कैसे भला होना है। हमने वोट देकर जिनको चुना था। आज वही हमसे कट्टर होने को कह रहा। मैं सोचता हूँ ,कट्टर हो कर मुझे क्या मिलेगा! हाँ मगर पीढ़ी दर पीढ़ी उसकी पार्टी को हमारे घर का वोट उसे जरूर मिलेगा! अर्थात कट्टर मतलब पुश्त दर पुश्त वोटर होने की गारंटी ..

घूमते-घूमते मैं केले के ठेले के पास आ गया हूँ।

'कट्टर केले कैसे दिये!' उधेड़बुन में मैं उससे पूछता हूँ।

' पचपन रुपये दर्जन!'

''आएँ!!' दाम तो वाकई कट्टर हैं!' मैं सोचता हूँ और आगे बढ़ लेता हूँ।

'पचास लग जाएँगे!' वह अपनी कट्टरता कुछ कम करता है। मेरे हिसाब से अभी भी बहुत ज्यादा थी। मैं यह जानता हूँ कि दाम की कट्टरता तय करने के पीछे इसका कोई हाथ नहीं। वह भी मेरी ही तरह है। 'कवि कहना चाहता है कि..' के जैसे हम वहीं रट कर चलने वाले लोग हैं, जिसे हमें रटा दिया जाता है।

'नहीं नाश्ते में आज गर्व खाऊँगा!' मैं उससे कहता हूँ

'आज तो खा लेंगे सर! मगर कल!' वह हँसता है।

'आज जो गर्व खाया है। मैं जानता हूँ वो पचेगा नहीं। इसको पचाने के लिए मनुष्यता का त्याग करना पड़ता है। इतिहास बदलना होता है। कल उल्टी हो ही जाएगी। नाश्ते की नौबत और तबियत ही नहीं होगी!'

'मगर परसों सर!'

'हाँ मगर परसो क्या!' मैं सोच में पड़ जाता हूँ।

परसों तुम्हारा ठेला लूट लूँगा!' मैं मजाक करता हूँ। वह सहम जाता है। मुझे झेंप नहीं गुस्सा आता है। यह मजाक को इतनी गम्भीरता से क्यों ले रहा! मजाक को सच समझ रहा!

'मजाक कर रहा हूँ!' मैं स्पष्ट करता हूँ। वह इसके बाद एक फीकी मुस्कान देता है। कमबख्त अभी भी सच मान रहा!

कुछ दिन बाद मैं अपने जागे मित्र के घर पहुँचता हूँ। जिसे मेजबान आ धमकना कहते हैं।

काउच पर मेरे लिए सोफा ही है, उस पर बैठते ही मैंने कट्टा निकाल कर उनकी गोद मे रख दिया। वह उछल पड़ा। जैसे बचपन में किसी के ऊपर प्लास्टिक का साँप फेंक देते थे।

'ये क्या है! उसने चौंकते हुए पूछा।

'कट्टा है!'

'हाँ वह तो मैं भी देख रहा हूँ!'

'तुमने कहा था कि कट्टर बनो!'

'तो!'

'तुमसे ज्यादा कट्टर बन गया हूँ, जैसा तुम से कहा था। यह कट्टा तुम्हारे बेटे के लिए लाया हूँ!'

'पागल हो! कैसे चाचा हो तुम! कलम की जगह कट्टा दे रहे हो!' वह गुस्से से बोला। मैं उसके गुस्से को देख रहा था।

'अपने बेटे को दो, जा के!' वह फिर बोला।

'दोस्त, मैं पूरी तरह से जाग चुका हूँ। इसलिए उसे पहले ही दे चुका हूँ!'

वह एक झटके से उठा। मेरा हाथ पकड़ कर उठाते हुए बोला,' तुम्हें आराम की जरूरत है। लगता है तुम कई दिनों से ठीक से सोये नहीं हो! भरपूर नींद लो जा के!'

मैं जाने लगा तो वह पीछे से टोका, 'और ये लेते जाओ!' यह कह कर उसने कट्टा मेरे हाथ में पकड़ा दिया।

सड़क पर आकर मैं हँसा। खूब हँसा।

उसी केले वाले के पास दुबारा पहुँचा। वह मुझे देखकर कुछ घबरा सा गया।

'ये क्या है सर!' वह डरते हुए पूछता है।

'कट्टा!' वह जड़ हो गया।

'अरे, बच्चों का खिलौना है ये!'

इस बात पर वह और डर जाता है। ऐसा क्या गलत बोल दिया मैंने! थोड़ी देर के लिए मैं सोचने लगता हूँ।

'अरे यह प्लास्टिक का खिलौना है! नकली! नकली है पूरी तरह!' मैं उसे तसल्ली देता हूँ।

'बिल्कुल असली लग रहा था सर!'

'यही तो दिक्कत है आजकल। लोग नकली को असली समझने लगे हैं!'

वह मुस्कुराता है।

'केले तो कट्टर है न!'

'बहुत! चखिए तो सर!'

'अभी एक को चखा कर आया हूँ!'

'जी!!!' वह मुझे गौर स देखता है।

'कुछ नहीं, तुम नहीं समझोगे!' मैं हँसता हूँ।

'क्यों नहीं समझेंगे सर! केले के साथ हमको भी कट्टर समझ रहे हैं क्या!'

मैं उसे देखता रह जाता हूँ। इस बात पर मैं तो आज कट्टर केला खा कर रहूँगा। मैं केला खरीद लेता हूँ। मैं केला खाता हूँ।'

'केला कट्टर हो न हो पर मीठा है!'

'कट्टर मीठा सर...' वह बोलता है।

हम दोनों हँस देते हैं...

व्यंग्य

आजादी को आपने कहीं देखा है!!!

-- अनूप मणि त्रिपाठी

रात को सुरक्षाकर्मी ने आकर बताया कि सर आजादी आयी हुई हैं।

नेता कुछ सोच में पड़ गया।

पूछा, 'आजादी!!! कौन आजादी!'

अब सुरक्षाकर्मी इसका क्या जवाब देता। वह हाथ बाँधे खड़ा रहा।

नेता फिर कुछ सोचते हुए बोला, 'अच्छा भेजो! देखते हैं!' सुरक्षाकर्मी जब जाने लगा तो नेता बोला, 'सुनो!अच्छे से तलाशी ले लेना!'

'जी सर' कहकर वह चला गया। थोड़ी देर बाद आजादी उसके सामने थी।

नेता ने उसे देखा। उसने पहचानने की कोशिश की। कई बार आँखें चकमक चकमक कीं। फिर उसे ध्यानपूर्वक देखा।

'इत्ती रात को!', नेता की आँखें अभी तक आजादी के ऊपर से हटी नहीं थीं।

'हाँ, इमरजेंसी थी!' आजादी ने आने का औचित्य बताया।

'हूँ..' नेता ने बस इतना ही कहा।

'मैं कब से खड़ी थी। आपसे मिलना चाह रही थी, मगर मुझे आने ही नहीं दे रहे थे सब!' आजादी ने एक साँस में सब बताया।

'आते ही शिकायत कर रही हैं आप!' नेता ने बहुत प्यार से कहा।

' न-न... अपना हाल बता रही हूँ!' आजादी ने सफाई दी।

'ऐसे थोड़े न कोई आ सकता!' नेता मुस्कुराते हुए बोला।

आजादी ने नेता को हैरत से देखा।

'देश अब आजाद है।' आजादी ने जोर से कहा।

यह सुनते ही नेता उठा। अपना कुरता झाड़ा। टॉयलेट में घुसा। थोड़ी देर बाद आजादी के कानों में फ्लश करने की आवाज आयी। नेता बाहर आया। आजादी को कुर्सी पर अभी तक बैठे देख उसका मुँह बिचका। उसने भारी मन से फिर से औपचारिकता निभायी।

'और बताएँ कैसे आना हुआ!' यह पूछते हुए वह सोफे पर बैठ गया।

आजादी तो जैसे इस अवसर के लिए ही बैठी थी। आजादी ने बताना शुरु किया,

'जब मैं यहाँ के लिए आ रही थी तो मैंने देखा कि एक गाँव में भीड़ लगी हुई है। कई बन्दूकें तनी हुई हैं। कुछ लोग अपशब्दों की बौछार कर रहे हैं, तो कुछ लोग हाथ जोड़ कर विनती कर रहे हैं। जब मैंने मामला पता किया तो पता चला कि दूल्हे को घोड़ी पर कुछ लोग बैठने नहीं दे रहे। मैंने विरोध करने वालों से कहा कि बैठने दो भाई, अब काहे का टण्टा...अब तो आजादी है। यह सुनते ही लोगों ने मुझे दौड़ा लिया...बोले कि...'

आजादी अभी बता ही रही थी कि बीच में नेता ने टोका, 'फिर मैं क्या कर सकता हूँ! यह तो पुलिस का मामला है।'

'आप आला कमान हैं। सारे निर्णय यहीं से लिए जाते हैं... यहाँ आने से पहले मैंने पता कर लिया है। तभी तो आप के पास आई हूँ...'

आला कमान शब्द सुनकर नेता को अच्छा लगा। कुरते के बटनों ने सहसा बहुत अधिक कसाव महसूस किया।

'जिस वर्ग से दूल्हा आता है, वो हमारा वोट बैंक नहीं हैं।' नेता ने दो टूक

कहा।

'वोट बैंक क्या होता है!' आजादी को समझ में नहीं आया।

नेता ने आजादी को देखा। वह भोली दीख रही थी। उसने महसूस किया कि वह चाहे जितने साल की हो गयी हो, मगर मैच्योर तो बिल्कुल ही नहीं हुई।

'वोट बैंक एक ऐसा बैंक होता है, जहाँ संविधान को लॉकर में बन्द करके रख दिया जाता है।' नेता ने मन ही मन में इस बात को दो-तीन बार बोला। जैसे वह कोई संकल्प दोहरा रहा हो। फिर आगे मन में उसने यह भी कहा। 'और जब कभी सत्ता का मन होता है, तो सत्ता द्वारा लॉकर खोलकर उस पर एक नजर मार ली जाती है।' और अब जाकर उसके मन की बात पूरी हुई।

आजादी के सवाल को टालते हुए वह बोला, आपका पर्सनल कोई काम हो तो बोलिए!'

आजादी झट से बोली,' कल एक होटल में जाते समय उसके बाहर मुझे एक अर्ध नग्न मिला। मैंने निगाहें नीची कर लीं. ..जैसे...'

'अब लोग उलजुलूल फैशन करने लगे हैं ' नेता बीच में बोल दिया।

'पहले मुझे भी ऐसा लगा। जब तक उस होटल में मैं नहीं घुसी थी। खाना खाने के बाद मैंने खाने का बिल देखा, तो मामला समझ में आया। बिल चुकाने में ही उसके कपड़े उतर गये होंगे। किसी तरह से मेरी इज्जत बची! आजकल घूमते वक्त मुझे कई लोग ऐसे ही दिख रहे हैं। महँगाई ने दो जून की रोटी मुहाल कर दी है...मैंने खुद जाकर दुकानों में रेट लिस्ट चेक की है। और तो और बेरोजगारी कोढ़ में खाज वाला काम कर रही है...' यह कहकर आजादी चुप हो गयी। अब वह कुछ हल्का महसूस कर रही थी। इस बार नेता जी ने उसे नहीं टोका। आजादी को हैरत हुई।

'देखो रही बात बेरोजगारी की... तो युवाओं को हमने दूसरे काम दे रखे हैं और वह उसी में खुश हैं... तुम्हें इसकी चिन्ता करने की जरूर नहीं है...'

आजादी वह दूसरे काम समझना चाहती थी, मगर उसने अपना सारा ध्यान महँगाई पर केंद्रित किया, 'और महँगाई!!! मैंने खुद देखा है कि इधर दाम में काफी बढ़ोतरी हुई है...'

'स्याला वाकई! दाम काफी बढ़ गये हैं!' नेता आजादी से न बोलकर खुद से बोला।

मगर आजादी ने सुन लिया। वह खुशी से फूली नहीं समायी। वह चहकते हुए बोली,

'मेरी किसी बात से तो सहमत हुए... अच्छा लगा कि आप को आटे दाल का भाव पता है!'

नेता ने आजादी को देखा। वह उस पर मोहित हुआ। मुस्कुराते हुए बोला, 'मैं विधायक की बात कर रहा हूँ आंटी जी... और आप आटे दाल जैसी तुच्छ बातों को लेकर बैठी हैं!'

आजादी सकपका गयी।

नेता आगे बोला, 'पता है,सरकार गिराना-बनाना कितना महंगा हो चला है आजकल! पहले विधायक एक दो करोड़ में मान जाते थे, अब स्याला पचास करोड़ से कम पे कोई राजी ही नहीं होता!' नेता थूक घोटते हुए बोला।

'हाँ तो आपको क्या कमी है! आपका कोठार तो भरा हुआ है!' कमरे में चारो ओर अपनी आँखों को घूमाते हुए आजादी बोली।

'पन मार्जिन कम होता है न! यह सब धंधे की बात है, आप नहीं समझोगी!' नेता थोड़ा झुँझलाया।

'आपके दुख के आगे तो उन लोगों का दुख कुछ भी नहीं!' आजादी जब यह सब कह रही थी तो उसकी आँखें जगमगाते झूमर को देख रही थीं।

नेता चुप रहा। वह जानता था कि आजादी उस पर तंज कस रही है।

'कहाँ आप विधायक खरीद रहे हैं और कहाँ जनता रोटी नहीं खरीद पा रही!' आजादी तुरन्त ही मुद्दे की बात पर आ गयी।

'झूठ बात, ऐसी कोई दिक्कत नहीं है। सब प्रोपेगेंडा है।' नेता गुस्से से बोला। कुछ सेकेंड रुक कर आगे बोला, 'राष्ट्र निर्माण में कुर्बानी तो देनी ही पड़ती है!'

'सरकार बनाने को आप राष्ट्र निर्माण कहते हैं! भूल गये आप इस राष्ट्र के लिए कितनी कुर्बानी दी गयी है!' न चाहते हुए भी आजादी का दर्द छलछला गया।

नेता चुप रहा। उसका मन ही नहीं हुआ कि इस बात की कोई सफाई दी जाए।

'वैसे राष्ट्र निर्माण का कोई खाका है!' आजादी ने पूछा।

'खाका नहीं खाकी है!' यह कहकर नेता हँस पड़ा।

'अरे महाराज! राष्ट्र निर्माण कैसे करेंगे!' आजादी ने खीजते हुए पूछा।

'ठोक-बजा कर'

'मैं समझी नहीं!'

'जो गद्दार हैं उनको ठोका जाएगा और जो राष्ट्र निर्माण में रोड़े अटकाएँगे उनको बजाया जाएगा!' नेता जोश में बोला। उसके चहेरे पर चमक आ गयी। आँखें लाल हो गयीं। सीना फूल गया। वह सोफे से पाँच-छः फीट उठा हुआ महसूस हो रहा था।

ये सब देख-सुन आजादी घबरा गयी। उसकी सासें तेज हो गयीं।

आजादी की ऐसी हालत देख नेता मुस्कुराया। बोला 'अरे मैं तो मजाक कर रहा हूँ!'

आजादी को यकीन न हुआ। वह अब भी घबराई हुई थी।

नेता आजादी को दुलारते हुए बोला, 'ये तो मुहावरा है। एक जुमला है बस! ठोक-बजा कर मतलब देख-परख कर! अपन कहते नहीं है कि कोई भी चीज लेने से पहले ठोक-बजा कर देख लेना चाहिए! है कि नहीं!'

आजादी ने सामान्य होने की कोशिश की।

'कुछ रचनात्मक भी होना चाहिए!' आजादी ने गम्भीर होकर कहा।

'वैसे इससे ज्यादा रचनात्मक क्या होगा, पर आपकी तसल्ली के लिए बता दूँ कि इसके अलावा भी हम बहुत कुछ रचनात्मक कर रहे हैं!' नेता ने सगर्व बताया।

'मसलन'

'हम इतिहास को दुरुस्त कर रहे हैं!' नेता ने अपना हाथ मसलते हुए कहा।

'इतिहास को कोई कैसे बदल सकता है!' आजादी को हैरत हुई।

'लिख के!'

'लिख के!'

'हाँ अपने आदमी से लिखवाकर!'

'यह तो झूठ होगा! मक्कारी होगी!' आजादी ने विरोध किया।

'अगर इसके आगे आपने एक लफ्ज भी कहा तो गद्दारी होगी!' नेता की आवाज भारी हो गई।

आजादी सहम गयी। उसकी हालत देख नेता को हँसी आ गयी।

आजादी को घुटन महसूस होने लगी। उसे लगा कि अगर यहाँ कुछ देर और रही तो उसका दम निकल जाएगा! वह नेता से बोली, 'अच्छा तो मैं चलूँ!'

'अरे ऐसे कैसे! आपके आने की खुशी में तो हम अभियान चला रहे हैं!'

'कैसा अभियान!'

'डी पी बदलो महाउत्सव अभियान!' नेता ने खुश होते हुए यह बात बतायी।

'जी, डीपी बदलो अभियान! इसमें क्या होगा जी!' आजादी अब कुछ नरम पड़ी।

'इसमें लोग अपने मोबाइल की डीपी बदल कर तिरंगा लगाएँगे! और हाँ एक बात और...जीडीपी नहीं डीपी अभियान!' नेता ने समझाया।।

'जी, मैंने भी तो वही कहा जी, डी पी बदलो अभियान!' आजादी ने विनम्रतापूर्वक कहा।

नेता ने आजादी को घूरा। अचानक उसका चेहरा सख्त होने लगा। उसके शरीर में कुछ परिवर्तन होने लगे।

'यहाँ आने से पहले तुम किससे मिली थी!' नेता अचानक आप से तुम पर आ गया। आजादी के बोलने से पहले वह बोला, 'गैंग से मिल कर आयी हो न!' नेता सोफे से उछल कर खड़ा हो गया।

'कौन सा गैंग!' आजादी ने डरते-डरते पूछा।

'तुम्हारे तेवर देखकर शक तो मुझे पहले ही हो गया था.. . तब से तुमको बर्दाश्त कर रहा हूँ! सवाल पे सवाल पूछे जा रही है! अरे वो ढपली बजाने वाले लौंडे-लफाड़ियों की टोली से मिली हो न तुम!' नेता आजादी के हाथ उमेठते हुए बोला।

आजादी जोर से चीखी।

काँपते हुए बोली, 'मिली नहीं हूँ, हाँ पर वे मिले थे!'

'हमें चाहिए आजादी!', नेता दाँत पीसते हुए अजब ढंग से बोला।

'यहाँ तो बहुत पड़पड़ बोल रही हो! वहाँ तुमसे कहा नहीं गया कि मैं तो तुम्हारे सामने हूँ और तुम स्यालों को अब कौन-सी आजादी लेनी है!' नेता ने अपने होठों को चबाया। नेता की भाव भंगिमा देख आजादी की जान सूख गयी।

'बोल न!', नेता चीखा।

'वे कह रहे थे कि मैं अधूरी है। उन्हें पूरी आजादी चाहिए!' यह कहकर आजादी चुप हो गयी।

'चुप क्यों हो गयी! आगे बोल!' नेता ने आजादी के कान पकड़े।

'वे कह रहे थे कि जहाँ बोलने तक की आजादी न हो, उसे क्या आजाद मुल्क कहेंगे!' आजादी सिसकियाँ लेती हुई बोली।

'बोलने की आजादी नहीं हैं! झूठ बोलते हैं वे सब! लोग बोल रहे हैं! खुले आम बोल रहे हैं! और खूब बोल रहे हैं! रुक तुझे मैं सबूत देता हूँ!'

नेता ने अपने मोबाइल पर कुछ सर्च किया और एक वीडियो उसके सामने कर दिया।आजादी ने देखा कि मोबाइल में एक लड़की कह रही थी कि आजादी तो अंग्रेजों से हमें लीज पर मिली है।

इसी क्रम में नेता ने झट दूसरा वीडियो भी दिखाया।

जिसमें एक बहुचर्चित अभिनेत्री कह रही थी कि आजादी तो हमें भीख में मिली थी। असली आजादी तो हमें कुछ वर्षों पहले मिली है।

यह सब देख आजादी स्तब्ध थी।

उसने हिम्मत कर नेता से पूछा, 'फिर मैं कौन हूँ!!!'

'फिलहाल तुम मेरी बंधक हो!' नेता ने स्थिति पूरी तरह से स्पष्ट कर दी।

उस रात आजादी को नेता के बंगले में घुसते हुए तो लोगों ने देखा, मगर बाहर निकलते हुए उसे किसी ने नहीं देखा!

साम्प्रदायिकता और संस्कृति

-- प्रेमचंद

साम्प्रदायिकता सदैव संस्कृति की दुहाई दिया करती है। उसे अपने असली रूप में निकलते शायद लज्जा आती है, इसलिए वह गधे की भाँति जो सिंह की खाल ओढ़कर जंगल में जानवरों पर रोब जमाता फिरता था, संस्कृति का खोल ओढ़कर आती है। हिन्दू अपनी संस्कृति को कयामत तक स्वरक्षित रखना चाहता है, मुसलमान अपनी संस्कृति को। दोनों ही अभी तक अपनी-अपनी संस्कृति को अछूती समझ रहे हैं, यह भूल गए हैं कि अब न कहीं मुस्लिम संस्कृति हैं, न कहीं हिन्दू संस्कृति, न कोई अन्य संस्कृति, अब संसार में केवल एक संस्कृति है, और वह है आर्थिक संस्कृति, मगर आज भी हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति का रोना रोए चले जाते हैं। हालाँकि संस्कृति का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं। आर्य संस्कृति है, ईरानी संस्कृति है, अरब संस्कृति है, लेकिन ईसाई संस्कृति और मुस्लिम या हिन्दू संस्कृति नाम की कोई चीज़ नहीं है। हिन्दू मूर्तिपूजक है, तो क्या मुसलमान क़ब्र-पूजक और स्थान-पूजक नहीं है? ताज़िए को शर्बत और शीरीनी कौन चढ़ाता है, मस्जिद को ख़ुदा का घर कौन समझता है? अगर मुसलमानों में एक सम्प्रदाय ऐसा है, जो बड़े से बड़े पैगम्बरों के सामने सिर झुकाना भी कुफ़्र समझता है, तो हिन्दुओं में भी एक सम्प्रदाय ऐसा है जो देवताओं को पत्थर के टुकड़े और नदियों को पानी की धारा और धर्म-ग्रन्थों को गपोड़े समझता है। यहाँ तो हमें दोनों संस्कृतियों में कोई अन्तर नहीं दिखता।

साम्प्रदायिकता सदैव संस्कृति की दुहाई दिया करती है। उसे अपने असली रूप में निकलते शायद लज्जा आती है, इसलिए वह गधे की भाँति जो सिंह की खाल ओढ़कर जंगल में जानवरों पर रोब जमाता फिरता था, संस्कृति का खोल ओढ़कर आती है।

तो क्या भाषा का अन्तर है? बिल्कुल नहीं। मुसलमान उर्दू को अपनी मिल्ली भाषा कह लें, मगर मद्रासी मुसलमान के लिए उर्दू वैसी ही अपरिचित वस्तु है, जैसे मद्रासी हिन्दू के लिए संस्कृत। हिन्दू या मुसलमान जिस प्रान्त में रहते हैं, सर्वसाधारण की भाषा बोलते हैं चाहे वह उर्दू हो या हिन्दी, बंग्ला हो या मराठी। बंगाली मुसलमान उसी तरह उर्दू नहीं बोल सकता और न समझ सकता है, जिस तरह बंगाली हिन्दू। दोनों एक ही भाषा बोलते हैं। सीमा-प्रान्त का हिन्दू उसी तरह पश्तो बोलता है, जैसे वहाँ का मुसलमान।

फिर क्या पहनावे में अन्तर है? सीमा-प्रान्त के हिन्दू और मुसलमान आपके सामने खड़े कर दिए जाएँ, कोई तमीज़ नहीं। हिन्दू स्त्री-पुरुष भी मुसलामानों के-से शलवार पहनते हैं, हिन्दू-स्त्रियाँ मुसलमान स्त्रियों की ही तरह कुरता और ओढ़नी पहनती-ओढ़ती हैं। हिन्दू पुरुष भी मुसलमानों की तरह कुलाह और पगड़ी बाँधता है। अक्सर दोनों ही दाढ़ी भी रखते हैं। बंगाल में जाइए, वहाँ हिन्दू और मुसलमान स्त्रियाँ दोनों ही साड़ी पहनती हैं, हिन्दू और मुसलमान पुरुष दोनों कुरता और धोती पहनते हैं। तहमद की प्रथा बहुत हाल में चली है, जब से साम्प्रदायिकता ने ज़ोर पकड़ा है।

खान-पान को लीजिए। अगर मुसलमान माँस खाते हैं तो हिन्दू भी अस्सी फ़ीसदी माँस खाते हैं। ऊँचे दरजे के हिन्दू भी शराब पीते हैं, ऊँचे दरजे के मुसलमान भी। नीचे दरजे के हिन्दू भी शराब पीते हैं, नीचे दरजे के मुसलमान भी। मध्यवर्ग के हिन्दू या तो बहुत कम शराब पीते हैं, या भंग के गोले चढ़ाते हैं, जिसका नेता हमारा पण्डा-पुजारी क्लास है। मध्यवर्ग के मुसलमान भी बहुत कम शराब पीते हैं, हाँ कुछ लोग अफ़ीम की पीनक अवश्य लेते हैं, मगर इस पीनकबाज़ी में हिन्दू भाई मुसलमानों से पीछे नहीं हैं। हाँ, मुसलमान गाय की कुर्बानी करते हैं, और उनका माँस खाते हैं लेकिन हिन्दुओं में भी ऐसी जातियाँ मौजूद हैं, जो गाय का माँस

खाती हैं, यहाँ तक कि मृतक माँस भी नहीं छोड़तीं, हालाँकि बधिक और मृतक माँस में विशेष अन्तर नहीं है। संसार में हिन्दू ही एक ऐसी जाति है, जो गो-माँस को अखाद्य या अपवित्र समझती है। तो क्या इसलिए हिन्दुओं को समस्त संसार से धर्म-संग्राम छेड़ देना चाहिए?

संगीत और चित्र-कला भी संस्कृति का एक अंग है, लेकिन यहाँ भी हम कोई सांस्कृतिक भेद नहीं पाते। वही राग-रागनियाँ दोनों गाते हैं और मुग़लकाल की चित्रकला से भी हम परिचित हैं। नाट्य कला पहले मुसलमानों में न रही हो, लेकिन आज इस सीगे में भी हम मुसलमानों को उसी तरह पाते हैं जैसे हिन्दुओं को।

फिर हमारी समझ में नहीं आता कि वह कौन-सी संस्कृति है, जिसकी रक्षा के लिए साम्प्रदायिकता इतना ज़ोर बाँध रही है।

यह सीधे-सादे आदमियों को साम्प्रदायिकता की ओर घसीट लाने का केवल एक मन्त्र है और कुछ नहीं। हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति के रक्षक वही महानुभाव और वही समुदाय हैं, जिनको अपने ऊपर, अपने देशवासियों के ऊपर और सत्य के ऊपर कोई भरोसा नहीं, इसलिए अनन्त तक एक ऐसी शक्ति की ज़रूरत समझते हैं जो उनके झगड़ों में सरपंच का काम करती रहे। इन संस्थाओं को जनता को सुख-दुःख से कोई मतलब नहीं, उनके पास ऐसा कोई सामाजिक या राजनीतिक कार्यक्रम नहीं है, जिसे राष्ट्र के सामने रख सकें। उनका काम केवल एक-दूसरे का विरोध करके सरकार के सामने फ़रियाद करना और इस तरह विदेशी शासन को स्थायी बनाना है। उन्हें किसी हिन्दू या किसी मुस्लिम शासन की अपेक्षा विदेशी शासन कहीं सह्य है। वे ओहदों और रियायतों के लिए एक-दूसरे से चढ़ा-ऊपरी करके जनता पर शासन करने में शासक के सहायक बनने के सिवा और कुछ नहीं करते।

मुसलमान अगर शासकों का दामन पकड़कर कुछ रियायतें पा गया है तो हिन्दू क्यों न सरकार का दामन पकड़े और क्यों न मुसलमानों ही की भाँति सुर्ख़रू बन जाए। यही उनकी मनोवृत्ति है। कोई ऐसा काम सोच निकालना, जिससे हिन्दू और मुसलमान दोनों एक होकर राष्ट्र का उद्धार कर सकें, उनकी विचार शक्ति से बाहर है। दोनों ही साम्प्रदायिक संस्थाएँ मध्यवर्ग के धनिकों, ज़मींदारों, ओहदेदारों और पदलोलुपों की हैं। उनका कार्य-क्षेत्र अपने समुदाय के लिए ऐसे अवसर प्राप्त करना है, जिससे वह जनता पर शासन कर सकें, जनता पर आर्थिक और व्यावसायिक प्रभुत्व जमा सकें। साधारण जनता के सुख-दुःख से उन्हें कोई प्रयोजन नहीं। अगर सरकार की किसी नीति से जनता को कुछ लाभ होने की आशा है और इन समुदायों को कुछ क्षति पहुँचने का भय है, तो वे तुरन्त उसका विरोध करने को तैयार हो जाएँगी। अगर और ज़ूयादा गहराई तक जाएँ, तो हमें इन संस्थाओं में अधिकांश ऐसे सज्जन मिलेंगे जिनका कोई-न-कोई निजी हित लगा हुआ है। और कुछ न सही तो हुक्काम के बंगलों पर उनकी रसाई ही सरल हो जाती है। एक विचित्र बात है कि इन सज्जनों की अफ़सरों की निगाह में बड़ी इज़्ज़त है, इनकी वे बड़ी ख़ातिर करते हैं। इसका कारण इसके सिवा और क्या है कि वे समझते हैं, ऐसों पर ही उनका प्रभुत्व टिका हुआ है। आपस में ख़ूब लड़े जाओ, ख़ूब एक-दूसरे को नुक़सान पहुँचाओ। उसके पास फ़रियाद ले जाओ, फिर उन्हें किसका ग़म है, वे अमर हैं। मज़ा यह है कि बाज़ों ने यह पाखण्ड फैलाना भी शुरू कर दिया है कि हिन्दू अपने बूते पर स्वराज प्राप्त कर सकते हैं। इतिहास से उसके उदाहरण भी दिए जाते हैं। इस तरह की ग़लतफ़हमियाँ फैलाकर इसके सिवा कि मुसलमानों में और ज़ूयादा बदगुमानी फैले और कोई नतीजा नहीं निकल सकता। अगर कोई ज़माना था, जब मुसलामानों के राजकाल में हिन्दुओं ने स्वाधीनता पायी थी, तो कोई ऐसा काल भी था, जब हिन्दुओं के ज़माने में मुसलमानों ने अपना साम्राज्य स्थापित किया था। उन ज़मानों को भूल जाइए।वह मुबारक दिन होगा, जब हमारे शालाओं में इतिहास उठा दिया जाएगा।

यह ज़माना साम्प्रदायिक अभ्युदय का नहीं है। यह आर्थिक युग है और आज वही नीति सफल होगी जिससे जनता अपनी आर्थिक समस्याओं को हल कर सके, जिससे यह अन्धविश्वास, यह धर्म के नाम पर किया गया पाखण्ड, यह नीति के नाम पर ग़रीबों को दुहने की कृपा मिटायी जा सके। जनता को आज संस्कृतियों की रक्षा करने का न अवकाश है, न ज़रूरत। 'संस्कृति' अमीरों का, पेटभरों का, बेफ़िक्रों का व्यसन है। दरिद्रों के लिए प्राण-रक्षा ही सबसे बड़ी समस्या है। उस संस्कृति में था ही क्या, जिसकी वे रक्षा करें। जब जनता मूर्छित थी तब उस पर धर्म और संस्कृति का मोह छाया हुआ था। ज्यों-ज्यों उसकी चेतना जागृत होती जाती है, वह देखने लगी है कि यह संस्कृति केवल लुटेरों की संस्कृति थी, जो राजा बनकर, विद्वान बनकर, जगत सेठ बनकर जनता को लूटती थी। उसे आज अपने जीवन की रक्षा की ज़ूयादा चिन्ता है, जो संस्कृति की रक्षा से कहीं आवश्यक है। उस पुरानी संस्कृति में उसके लिए मोह का कोई कारण नहीं है। और साम्प्रदायिकता उसकी आर्थिक समस्याओं की तरफ़ से आँखें बन्द किए हुए ऐसे कार्यक्रम पर चल रही है, जिससे उसकी पराधीनता चिरस्थायी बनी रहेगी।

साहित्य

मिर्ज़ा ग़ालिब : फिर मुझे दीद-ए-तर याद आया

-- विजय गुप्त

मिर्ज़ा ग़ालिब का ख़याल आते ही हाथ सलाम के लिए उठता है और सिर अदब से झुक जाता है। उन्हें पढ़ते और गुनते हुए हर्फ़ की रौशनी से दिल-दिमाग़ रौशन हो उठता है। शब्द-लोक का जादू धीरे-धीरे खुलता जाता है और हम जादुई असर में बंधे हुए शब्दों का मोल और महत्व समझ पाते हैं। लोक प्रचलित है कि शब्द महिमामयी होते हैं। वो आपको बना सकते हैं और मिटा भी सकते हैं। शब्द-महिमा कबीर भी गाते हैं--

साधो शब्द साधना कीजै

जो ही शब्दते प्रगट भये सब सोई शब्द गहि लीजै

शब्द गुरु शब्द सुन सिख भये शब्द सो बिरला बूझै

शब्द-साधना कोई बच्चों का खेल नहीं है। उन्हें मानीख़ेज़ बनाने के लिए, अपने अनुभवों से मालामाल करने के लिए आँसू और रक्त की समिधा चढ़ानी पड़ती है। देह को गलाना पड़ता है और आत्मा को जलाना पड़ता है। मिर्ज़ा ग़ालिब एक-एक हर्फ़ के लिए अपने को ज़िन्दगी की दहकती हुई भट्ठी से गुज़ारते हैं, तब कहीं जाकर उनके अशआरों में हर्फ़ नगीनों की तरह चमकते हैं। क्या मज़ाल कोई उनके इन्तख़ाब पर सवाल उठा सके, कोई उन पर उँगली रख सके। मिर्ज़ा को अपने हर्फ़ पर गुमान है। वह लिखते भी हैं कि--

लिखता हूँ 'असद' सोज़िशे दिल से सुख़ने गर्म

ता रख न सके कोई मेरे हर्फ़ पर अंगुश्त।

असहनीय दर्द, यातना, अपमान और घोर आर्थिक विपत्तियों के बीच भी शब्द और कविता के प्रति उनका लगाव और समर्पण कभी कम नहीं हुआ। बाहर वह ज़िन्दगी की मुश्किलों से जूझते रहे और भीतर ख़ुद से लड़ते, लहूलुहान होते हुए हर्फ़ और अदब को अतल गहराई और अनछुई ऊँचाई देते रहे। दिन-ब-दिन अदब से यह लगाव बढ़ता चला गया और उन्माद की सारी हदें पार कर गया। हद से पार होना ही शिखर छूना है और निःसन्देह मिर्ज़ा ग़ालिब उर्दू अदब और विश्व साहित्य के शिखर व्यक्तित्व हैं। उर्दू साहित्य के मर्मज्ञ अयोध्या प्रसाद गोयलीय बिल्कुल ठीक फरमाते हैं कि-- "महाभारत और रामायण पढ़े बग़ैर जैसे हिन्दू धर्म पर कुछ नहीं बोला जा सकता, वैसे ही ग़ालिब का अध्ययन किये बिना, बज़्मे-अदब में मुँह नहीं खोला जा सकता।" उर्दू-फ़ारसी अदब की अन्तरआत्मा में उतरने के लिए ग़ालिब के जीवन, आत्मसंघर्ष और सर्जनात्मकता का अध्ययन-मनन ज़रूरी है।

मिर्ज़ा अपना सुख-दुःख, राग-रंग, हँसी-आँसू, योग-वियोग, जीवन-मृत्यु और विकट आत्मसंघर्ष की बातें किसी से कहते नहीं हैं, चुपचाप अपनी रचनाओं में, ख़तो-किताबत में दर्ज करते चलते हैं। बहार और ख़िज़ाँ के जितने रंग उनके शेरों में बिखरे हुए हैं, शायद उतने रंग किसी चित्रकार के पास भी नहीं हैं। अली सरदार जाफ़री लिखते हैं कि-- "ग़ालिब ने एक फ़ारसी शेर में कहा है कि ख़िज़ाँ और बहार की इससे ज़्यादा कोई हक़ीक़त नहीं है कि एक पैमान-ए-रंग मुसलसल गर्दिश कर रहा है, उसका एक रंग बहार है, और दूसरा ख़िज़ाँ।"[(1)] वसन्त और पतझड़ कुदरत के ही दो रंग-रूप हैं। सृष्टि इन्हीं दो रंगों की मुसलसल आवाजाही और कार्रवाई है। इनका कोई आरंभ और अन्त नहीं है। कुदरत की ही मानिन्द ज़िन्दगी भी इन्हीं दो रंगों के साये में रसलीन और ग़मगीन होती है। कुछ शेर मुलाहिज़ा कीजिए,

मत पूछ, कि क्या हाल है मेरा, तिरे पीछे

तू देख, कि क्या रंग है तेरा, मिरे आगे

* * *

फिर देखिए, अन्दाज़-ए-गुल अफ़शानि-ए-गुफ़्तार[1]

रख दे कोई पैमानाः-ए-सहबा[2] मेरे आगे

(1. फूल बरसाने वाली बातें 2. मदिरापात्र)

मिर्ज़ा की ज़िन्दगी में फूल तो कम बरसे हैं, अलबत्ता रेत की आँधियाँ चली हैं और काँटे इए कदर चुभे हैं कि आत्मा तक छलनी हो चुकी है। वह अपनी तबाहहाली पर लिखते हैं कि रक्त के समन्दर में दर्द की लहरें उठ रही हैं, उठने दो, क्या-क्या अभी आगे होगा, देखने दो--

है मौजज़न[1] इक कुल्ज़ुमे ख़ूँ[2] काश यही हो

आता है अभी देखिए क्या-क्या मेरे आगे

(1. लहरें मारता हुआ 2. रक्त का समन्दर)

देखने की बात यह भी है कि आत्मपीड़ा की अभिव्यक्ति ग़ालिब इतनी संजीदगी, ईमानदारी, सच्चाई और गहराई के साथ करते हैं कि वह युग की पीड़ा हो जाती है। सीमित से असीमित हो जाती है। ग़रीबी, मोहताज़ी, बेइज़्ज़ती और परनिर्भरता के बावजूद ग़ालिब अपनी पीड़ा को सामाजिक पीड़ा से जोड़ कर उसे नयी काव्यात्मक ऊँचाई और अद्भुत अर्थ-सौन्दर्य देते हैं। पीड़ा से वह बेचैन और बहुत व्यथित होते हैं, टूटते भी हैं। अपने पर तंज़ करते हुए ज़माने को आईना भी दिखाते हैं--

हुआ है शह[1] का मुसाहिब[2] फिरे है इतराता

वगरनः शह्र में ग़ालिब की आबरू क्या है

(1. शाह, बादशाह 2. सभासद)

और यह भी कि--

काबे किस मुँह से जाओगे ग़ालिब

शर्म तुमको मगर नहीं आती

शर्म उन्हें आनी चाहिए जो फ़क़त सौदागर हैं। जो सिर्फ़ बेचना और ख़रीदना जानते हैं। दिल, ज़मीन, क़ुदरत, कला, साहित्य और इनसान भी उनके लिए सोना उगलने वाली मशीन और ऐशो-आराम का साधन भर हैं। दोस्ती, दया, करुणा, नैतिकता और प्रेम का कोई मोल नहीं। मोल है तो सत्ता, दौलत, ताक़त और एकतरफ़ा अधिकार का। मिर्ज़ा ग़ालिब दुनिया के दस्तूर को, धन-सम्पदा की शक्ति को, सत्ता की बर्बरता को, नकली-असली तमाशे को ख़ूब समझते हैं और अपनी दर्द भरी अनुभूति इस शेर में बयाँ करते हैं कि--

बना कर फ़क़ीरों का हम भेस ग़ालिब

तमाशा-ए-अहले-करम[1] देखते हैं

(1. दुनिया का तमाशा)

तमाशाई दुनिया में दोस्ती का दंभ और दिखावा करने वाले दोस्तों के बारे में ग़ालिब लिखते हैं कि--

ये कहाँ की दोस्ती है बने हैं दोस्त नासेह[1]

कोई चारासाज़[2] होता कोई ग़मगुसार[3] होता

(1. उपदेशक 2. चिकित्सक 3. दुःख का साथी)

सुख-दुःख के सच्चे और समझदार साथी के लिए वह हमेशा तरसते रहे। काव्य मर्मज्ञ और रसिक आलोचक का इन्तज़ार उन्हें हमेशा रहा। अली सरदार जाफ़री लिखते हैं कि-- "... मीर ने ग़ालिब की प्रारंभिक शायरी देख कर कहा था कि कोई योग्य उस्ताद मिल गया तो अच्छा शायर बन जाएगा नहीं तो निरर्थक बकने लगेगा।"[(2)] मीर की भविष्यवाणी सच हुई। ग़ालिब अच्छे ही नहीं, बल्कि उर्दू-फ़ारसी के सर्वोत्तम युगप्रवर्तक शायर बने। लेकिन निरर्थक बकने वालों ने उन्हें हमेशा अपमानित किया। उन्हें क़र्ज़ देने वालों ने बेहद परेशान किया। अली सरदार जाफ़री ने उन मुश्किल दिनों के बारे में लिखा है कि-- ग़ालिब को, "ऋणदाताओं की नालिश और डिग्रियों के डर से घर में छिप कर बैठना पड़ा और किसी शत्रु के षड्यंत्र से जुए, (शतरंज और चौसर) की लत में क़ैदख़ाने का अपमान सहन करना पड़ा। मुग़ल दरबार में, जिसकी बहार लुट चुकी थी, वह आदर-पद भी न मिला जो निम्नतर कोटि के कवियों को प्राप्त हो रहा था और आयु के अन्तिम चरण में एक बौद्धिक वाद-विवाद के अपराध में बरसों माँ-बहन की गालियाँ खानी पड़ीं।"[(3)] अपनी बेकली और वेदना को ग़ालिब एक क़ता में व्यक्त करते हैं--

अय नवासाज़-ए-तमाशा[1], सर ब कफ़[2] जलता हूँ मैं

इक तरफ़ जलता है दिल, और इक तरफ़ जलता हूँ मैं

है तमाशा गाह-ए-सोज़-ए-ताजः[3], हर यक अज़्व-ए-तन[4]

ज्यों चराग़ान-ए-दिवाली[5] सफ़ ब सफ़[6] जलता हूँ

(1. तमाशे को सजानेवाला 2. सर हथेली पर लिए हुए 3. नयी तपन का क्रीड़ास्थल 4. शरीर का हर अंग 5. दिवाली के दीप 6. पंक्ति के बाद पंक्ति)

अय तमाशा सजानेवाले, सर हथेली पर लिए हुए, जलता हूँ मैं, दिल भी जलता है, मैं भी जलता हूँ। मेरा वजूद जलन और तपन का केन्द्र बन चुका है। जैसे दीवाली का दीप पंक्ति दर पंक्ति जलता है, वैसे ही मेरा अंग-अंग जलता है। जलते हुए अस्तित्व का ऐसा हृदयग्राही और अद्भुत चित्रण पढ़ने-सुनने वाले को दाह और ताप की घनी अनुभूतियों से भर देता है, और वे आग के दरिया में डूबने-उतराने लगते हैं। रचयिता और भोक्ता के बीच का अन्तर मिट जाता है। दोनों एकमेक हो जाते हैं। एक ही भावतरंग में दोनों संचरित होने लगते हैं। इसे ही गुणीजन साधारणीकरण कहते हैं।

साधारणीकरण की प्रक्रिया को ग़ालिब ने अपनी जटिलता के बावजूद उर्दू साहित्य में सम्भव किया और उसे कलात्मक रंग और तेवर दिया। अपनी कल्पना, दार्शनिकता, और प्रयोगों की नवीनता से उन्होंने उर्दू साहित्य को समृद्ध किया और उसे शिखर तक पहुँचाया। कल्पना और यथार्थ के वह बेजोड़ कवि हैं। प्रोफ़ेसर सैयद एहतेशाम हुसैन बज़ा फ़रमाते हैं कि-- "केवल कल्पनाओं से हटकर वे जीवन की उन समस्याओं की ओर आए, जिनका उन्हें वास्तविक अनुभव था। बहुत थोड़े समय में उनकी काव्य-रचना में दक्षता पैदा हो गयी। उनकी उपमाएँ और उत्प्रेक्षाएँ नयी होती थीं, उनकी कल्पना शक्ति इतनी प्रबल थी कि वो बेजोड़ वस्तुओं और अनमिल विषयों में भी समानता और सम्बन्ध ढूँढ लेते थे। जितना

समय बीतता गया, उतना ही ग़ालिब के काव्य में दार्शनिक गहराई और कलात्मक सुन्दरता बढ़ती गयी।"(4)

कला की गहराई और सुन्दरता अपनी क़ीमत वसूल करती है। वह उस गुप्त धन की तरह है, जो बहुत मशक्कत और जानमारी के बाद ही मिलती है। ग़ालिब को भी यह धन पारा-पारा हो कर ही मिला था। और दुःख भी कैसा? यह महाकवि के शब्दों में ही सुनिए, "पाँच बरस का था तो अब्बा गुज़र गये और जब नौ बरस का हुआ तो चाचा भी नहीं रहे। उनकी जागीर के बदले, मेरे और मेरे क़रीबी रिश्तेदारों के लिए, नवाब अहमद बख़्श ख़ाँ के साथ दस हज़ार रुपये सालाना जागीर की व्यवस्था हुई लेकिन वह नहीं मिली। सिर्फ़ तीन हज़ार रुपये सालाना, जिसमें से मेरा निजी हिस्सा सिर्फ़ साढ़े सात सौ रुपये वार्षिक, मिला। मैंने अंग्रेज़ी सरकार से इस ग़बन के बारे में अरज़ी लगाई। रेज़ीडेण्ट बहादुर बरख़ास्त हो गये और सेक्रेटरी गवर्नमेण्ट हलाक़। दिल्ली के बादशाह ने पचास रुपये माहवार का वज़ीफ़ बाँधा, मगर उसके उत्तराधिकारी इस फ़ैसले के दो बरस बाद गुज़र गये। बादशाह वाजिद अली शाह ने पाँच सौ रुपया साल तय किया था मगर वे भी दो ही साल में मर गये, यानी मेरे नसीब में यही सब बँधा है।"(5)

साधारण दिल-जिगर का आदमी तो दुःख के हल्के झटके से झटक जाता है, और दुःख के झंझावातों में तो आपा ही खो बैठता है। लेकिन ग़ालिब ने दुःख के तमाम प्रहारों और अपमान के आघातों को झेला। तार-तार हुए लेकिन आपा नहीं खोया। वह डटे रहे और अन्याय और अपमान को उन्होंने शब्द-शक्ति, काव्य-कौशल और अद्वितीय सौन्दर्य में रूपान्तरित कर दिया। दुःख से आँखें चार करने वाला शायर ही लिख सकता है कि--

रात दिन गर्दिश[1] में हैं सात आसमाँ

हो रहेगा कुछ न कुछ, घबराएँ क्या (1. घूमना, चक्कर)

दुःख बराबर हमलावर रहा लेकिन उन्होंने उसकी नुमाइश कभी नहीं की। सहानुभूति पाने के लिए जो दुःख का प्रदर्शन करते हैं, उनका हाल तो वह अपने से भी बुरा पाते हैं। एक शेर में ग़ालिब कहते हैं कि-- अपनी बरबादी पर दाद पाने की तमन्ना रखने वाले तो मुझसे भी ज़्यादा अत्याचार की तलवार से घायल हैं।

हुई जिनसे तवक़्क़ो[1] ख़स्तगी[2] की दाद[3] पाने की

वो हमसे ज़ियादा ख़स्ता-ए-तेग़े[4] सितम निकले

(1. आशा 2. बिखराव 3. प्रशंसा 4. अत्याचार की तलवार से घायल)

दुःख की चोट और उसके जानलेवा असर को वह इतने प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करते हैं कि वह 'तीरे नीमकश' की तरह जिगर में धँसा रह जाता है, और दर्द की लहरें वजूद को तहस-नहस करती रहती हैं। उनका अन्दाज़-ए-बयाँ देखिए--

दिल नहीं, तुझको दिखाता वर्ना दाग़ों की बहार

इस चरांगाँ[1] का करूँ क्या, कारफ़र्मा[2] जल गया

(1. रौशनी 2. प्रबन्धक)

* * *

ब-नीम ग़म्ज़ा[1] अदा कर हक़े वदीअते नाज़[2]

नियामे पर्दा-ए-ज़ख़्मे जिगर[3] से ख़ंजर खेंच

(1. आँखों का आधा संकेत 2. गर्व में लीन 3. कवच में छुपी कटार की भाँति दिल का घाव)

* * *

हुआ जब ग़म से यों बेहिस[1], तो ग़म क्या सर के कटने का

न होता गर जुदा तन से, तो ज़ानू[2] पर धरा होता

(1. सुन्न 2. घुटना)

* * *

इब्न-ए-मरियम[1] हुआ करे कोई

मेरे दुःख की दवा करे कोई (1. मरियम का बेटा ईसा)

महाकवि के दुःखों की दवा नहीं हो सकी। चारागर बेअसर रहे। बीमारी और परवशता अपना निर्मम खेल खेलती रही। मुंशी हरगोपाल 'तफ़्ता' को उन्होंने पत्र लिखा, "मुझको देखो, न आज़ाद हूँ, न मुक़य्यद, न रंजूर हूँ, न तन्दुरुस्त, न ख़ुश हूँ न नाख़ुश, न मुर्दा हूँ न ज़िन्दा। जिए जाता हूँ, बातें किए जाता हूँ, रोटी रोज़ खाता हूँ, शराब गाह-ब-गाह पिए जाता हूँ। जब मौत आएगी मर भी रहूँगा। न शुक्र है, न शिकायत, जो तक़रीर है बस बीते-हिकायत है।"(6)

नवाब अलाउद्दीन ख़ाँ को लिखे ख़त में अपना दुःख बयाँ करते हैं कि-- "मियाँ! बड़ी मुसीबत में हूँ। महलसरा की दीवारें गिर गयीं, पाखाना ढह गया, छतें टपक रही हैं। तुम्हारी फूफी कहती है, हाय ! दबी हाय ! मरी। दीवान ख़ाने का हाल महलसरा से बदतर है। मैं मरने से नहीं डरता, लेकिन फ़ुक़दाने-राहत से घबरा गया हूँ। अब्र दो घण्टे बरसे तो छत चार घण्टे बरसती है।"(7)

अपने कठोर जीवन अनुभवों से ग़ालिब समझ चुके थे कि दर्द को दर्द ही काटता है और उसका हद से गुज़र जाना ही दवा हो जाना है। हद से बेहद होना ही जीवन-रहस्य और काव्य-सत्य को पाना है। भौतिक के साथ आध्यात्मिक अनुभूति को वह बहुत

दिलकश और आध्यात्मिक ढंग से कहते हैं--

इशरत-ए-क़तरा[1] है दरिया में फ़ना[2] हो जाना

दर्द का हद से गुज़रना है दवा हो जाना

(1. बूँद का ऐश्वर्य 2. विलीन)

दरिया में विलीन हो जाना बूँद का महत्व और ऐश्वर्य है जबकि दर्द का चरम तक पहुँचना ही दवा है। व्यक्ति समाज की इकाई है और आनन्द का प्रस्थान बिन्दु दर्द है। ग़ालिब अपने एक और शेर में कहते हैं कि--

रंज से ख़ूगर[1] हुआ इनसाँ तो मिट जाता है रंज

मुशकिलें इतनी पड़ीं मुझ पर कि आसाँ हो गयीं

(1. अभ्यस्त)

ग़ालिब के काव्य और जीवन में हम विविध रंग देखते हैं। इन रंगों को खुलासा करते हुए सैयद एहतेशाम हुसैन मार्के की बात लिखते हैं कि-- "इसमें सन्देह नहीं कि वे सर से पाँव तक सामन्तवादी सभ्यता के रंग में डूबे हुए थे और उसकी अच्छाइयाँ और बुराइयाँ सब उनमें भी मौजूद थीं, लेकिन उनकी आँखें तो खुली हुई थीं और निरीक्षण शक्ति से काम लेकर वे जीवन से ऐसी सच्चाइयाँ ढूँढ निकालते थे, जो दूसरों को नहीं दीख पड़ती थीं। बदलती हुई दुनिया को देखकर उन्हें यह विश्वास हो गया था कि यह समय बदल जाएगा, परन्तु इतिहास का कोई दार्शनिक दृष्टिकोण न होने के कारण वे भविष्य निर्माण के बारे में वे कुछ नहीं बता सकते थे। वे स्वयं उस पतनशील सभ्यता के एक प्रतीक थे और अत्यन्त सुन्दरता रखने के बावजूद निराशा और भय की एक हल्की-सी घटा उनकी कविताओं पर छाई हुई थी। उनकी रचनाओं में नैराश्य की भावना कम नहीं है, परन्तु वे इस बात का प्रचार करते थे कि जीवन से उसका सारा रस निचोड़ लेना चाहिए।"(8)

मिर्ज़ा आजीवन कोशिश करते रहे कि जीवन की सरसता बनी रहे। अमीरी का ठाट-बाट और राग-रंग चलता रहे, लेकिन आर्थिक कठिनाइयाँ और तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियाँ उन्हें भीतर ही भीतर तोड़ती रहीं; पस्त करती रहीं। वह शिकवों से भरे रहे पर जीवन-रस की लालसा बनी रही।

पुर[1] हूँ मैं शिकवे से यूँ, राग से जैसे बाजा

इक ज़रा छेड़िए, फिर देखिए, क्या होता है (1. भरा हुआ)

होना क्या था, भला चाहा था, पर बुरा हुआ;

ख़ूब था, पहले से होते जो हम अपने बदख़्वाह[1]

कि भला चाहते हैं और बुरा होता है (1. बुरा चाहने वाला)

उनकी जागीरें छीन ली गयीं। पेंशन के लिए सरकारी महकमों की ख़ाक छानते रहे। इधर से उधर भटकते रहे, अर्जियाँ लिखते रहे। अपमानित और उत्पीड़ित होते रहे। सबसे दुखदायी बात यह थी कि उन्हें विवश होकर अमीरों और अंग्रेज़ हुक्मरानो की झूठी तारीफ़ें करनी पड़ीं। क़सीदे लिखने पड़े। अपनी इस लाचारी पर ग़ालिब लिखते हैं कि--

कोई उम्मीद बर[1] नहीं आती (1. पूर्ण)

कोई सूरत नज़र नहीं आती

आगे आती थी हाले दिल पे हँसी

अब किसी बात पर नहीं आती

ग़ालिब की यह निराशा उनके युग की भी निराशा है। मुग़ल काल का रौशन चिराग़ बुझने के क़रीब था और अंग्रेज़ी साम्राज्य के ज़ुल्म बढ़ते और असहनीय होते जा रहे थे। 1857 के विद्रोह से मिर्ज़ा ग़ालिब भी अछूते नहीं रहे। बहादुर शाह ज़फ़र के बेटों का क़त्ल कर दिया गया और उन्हें क़ैद कर रंगून भेज दिया गया, और वहीं, असहनीय दर्द और तिरस्कार ने उनकी जान ले ली। ग़ालिब को भी उनका काव्य गुरु होने का ख़ामियाज़ा भुगतना पड़ा। अंग्रेज़ सरकार उन्हें भी विद्रोही और बाग़ी मानने लगी। जबकि दूर-दूर तक ऐसा कोई मामला नहीं था। राजनीति से मिर्ज़ा का वास्ता कभी नहीं रहा। बस वह सन्देह का शिकार हुए। उनकी पेंशन बन्द कर दी गयी। मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। अली सरदार ज़ाफ़री ने मिर्ज़ा की मनोदशा का मर्मस्पर्शी काव्यात्मक विवरण देते हुए लिखा है कि-- "... दिल्ली आँखों के सामने उजड़ी, बन्धु-बाँधव आँखों के सामने क़त्ल हुए, समकालीन कवि और विद्वान फ़ांसियों पर चढ़ा दिए गये और काले पानी भेज दिए गये और ग़ालिब के लिए 'मातम-ए-यक-शहर-ए-आरज़ू' (कामना नगरी का शोक) के अतिरिक्त कुछ बाक़ी नहीं रह गया। इन हालात में वह यही कहने को विवश था -

न गुल-ए-नग़्मः[1] हूँ न पर्दः-ए-साज़

मैं हूँ अपनी शिकस्त की आवाज़(9) (1. फूलों की सरसराहट)

ग़ालिब शिकस्ता ज़िन्दगी की आवाज़ सुनते रहे और उसकी गूँज से अपने गद्य और पद्य में अमर संगीत रचते रहे। यह संगीत रहती दुनिया तक क़ायम रहेगा और चित्रकारों, मूर्तिकारों, संगीतकारों, गायकों, वादकों, पाठकों, लेखकों, आलोचकों और श्रोताओं को अपनी ओर खींचता रहेगा। इस रचाव-बनाव में उन्हें कोई बन्धन स्वीकार नहीं था। उन्होंने धार्मिक और सामाजिक पाबंदियों को कभी स्वीकार नहीं किया।(9)

उन्होंने न नमाज पढ़ी, न रोज़े रखे। न कोई दिखावा किया, न धार्मिक कर्मकाण्ड किया। वह स्वतंत्र और उन्नत चेतना के रचनाकार थे। जो कुछ भी किया, खुलकर किया। शराब पीते रहे, लेकिन संयम नहीं खोया। हर धर्म के माननेवालों से बराबरी का व्यवहार किया। दोस्ती की। किसी से कोई दुश्मनी नहीं की। धर्म और भाषा कभी उनके आड़े नहीं आई। अंग्रेज़ तक उनके दोस्त रहे। एक शेर में मिर्ज़ा का स्वभाव प्रकट होता है--

आज़ाद रौ हूँ और मेरा मसलक है सुलहे-कुल

हरगिज़ कभी किसी से अदावत नहीं मुझे

फ़िराक़ साहब ग़ालिब के स्वभाव के बारे में लिखते हैं कि-- "इसमें दो बातें उल्लेखनीय हैं - उनका 'आज़ाद रौ' यानी स्वाधीन प्रकृति का होना और दूसरा कभी किसी से संघर्ष में न आना। . .. इस स्वतंत्र प्रवृत्ति के साथ ही वे विद्रोही भावना से भी दूर थे। ... उनके हृदय में शिया-सुन्नी, हिन्दू-मुसलमान किसी प्रकार का भेदभाव नहीं था, ... राजनीति में भी उन्हें किसी से विरोध न था। वे बहादुरशाह जफ़र और वाजिद अली शाह के साथ ही अंग्रेज़ हाकिमों की प्रशंसा में भी क़सीदे कहते थे और अपने इस कृतित्व को उन्होंने कभी छुपाया नहीं। उन्होंने राजनीति के क्षेत्र में कभी क़दम ही नहीं बढाया। उनका मानसिक संसार सबसे अलग था, जहाँ किसी प्रकार के सामाजिक सिद्धान्त लागू नहीं किये जा सकते।"[10]

इसमें दो राय नहीं है कि उनमें व्यक्तिवाद बहुत प्रबल था। प्रखर व्यक्तिवाद ने ही उन्हें अहंकारी और स्वाभिमानी बनाया था। उन्हें अपने उच्चवंशीय राजकुल पर बहुत अभिमान रहा। वह ईरानी सलजूक़ी राजवंश से सम्बन्ध रखते थे। ईरानी संस्कार और फ़ारसी ज़बान के प्रति वह आजीवन समर्पित रहे। सलजूक़ियों के पतन के बाद उनके पितामह को समरकन्द छोड़ना पड़ा। शाह आलम के हिन्दुस्तान में उन्हें आसरा तो मिला पर उचित सम्मान नहीं मिला। पितामह ने बहुत संघर्ष किया। शाह आलम के पतन के बाद दिल्ली उजड़ने लगी। सामन्तों की जागीरें छीन ली गयीं। ग़ालिब के पिता अब्दुल्ला बेग ने लखनऊ में नवाब आसिफ़ुद्दौला के दरबार में क़िस्मत आज़माई। हैदराबाद में निज़ाम अली के दरबारी हुए। हैदराबाद छूटा तो आगरा लौटे और अलवर में राजा बख़्तावर सिंह की नौकरी बजाई और एक युद्ध में मारे गये।

मिर्ज़ा की माता उमराव बेगम भी उच्च वंशीय थीं। राजसी वैभव और ठाठ-बाट के प्रति ग़ालिब का मोह स्वाभाविक था, और यह मोह कभी कम नहीं हुआ। मजबूरियों और विपत्तियों ने उनसे वह सब कुछ छीन लिया जो उन्हें बहुत प्रिय था। पिता के मरने के बाद उनका लालन-पालन चाचा नसिरुल्ला बेग की देख-रेख में हुआ। नसिरुल्ला बेग की मौत के बाद अग्रेज़ सरकार ने उनकी जागीरें और सम्पत्तियाँ जप्त कर लीं। बदले में कुछ पेंशन निर्धारित की, जो बाद में बन्द कर दिया गया। उसके बाद अर्ज़ियों और भागदौड़ में मिर्ज़ा का जीवन कठिन से कठिनतर होता चला गया। विपरीत परिस्थितियों में भी ग़ालिब काव्य-साधना करते रहे। उनकी कृतियों ने फ़ारसी और उर्दू साहित्य को नयी चमक और असर से भर दिया। अभिव्यक्ति का अछूता अन्दाज़ और कथ्य और शिल्प की मनमोहक कारीगरी ने ग़ालिब को शायर-ए-आज़म बना दिया। फ़िराक़ साहब ने लिखा है कि "उर्दू के काव्य-गगन में लाखों सितारे चमक रहे हैं, लेकिन इनमें से सबकी नहीं तो अक्सर की रौशनी को मन्द कर देनेवाला चाँद सिर्फ़ एक है और वह है 'ग़ालिब'"।[11]

कविताओं के साथ उनकी चिटिठ्याँ और गद्य रचनाएँ भी साहित्य के इतिहास में बहुत ऊँचा स्थान रखती हैं। उन्हें दबीर-उल-मुल्क और नज़्म-उद-दौला के ख़िताब से नवाज़ा गया। वह शाही इतिहासविद भी थे। उन्होंने मुग़ल वंश के इतिहास का एक भाग फ़ारसी में 'मेहरे-नीमरोज़' के नाम से लिखा। मुश्किलों ने इतिहास का दूसरा भाग लिखने का मौक़ा ही नहीं दिया। आर्थिक मोर्चे पर वह मात खाते रहे। जुए की लत और शराबनोशी ने उन्हें कर्ज़ के जाल में बुरी तरह फँसा दिया। कर्ज़ देने वालों ने उन पर नालिश कर दी और उन्हें अदालत में पेश होना पड़ा। यह तो उनकी विनोदप्रियता और हाज़िरजवाबी का चमत्कार है जो उन्हें लड़ने का हौसला देती रही है। फ़िराक़ साहब ने अपनी किताब में यह क़िस्सा बयान किया है, "एक बार मिर्ज़ा पर बहुत क़र्ज़ हो गया। महाजनों ने नालिश कर दी तो अदालत में शेर पढ़ा--

क़र्ज़ की पीते थे मय लेकिन समझते थे कि हाँ

रंग लाएगी हमारी फ़ाक़ामस्ती एक दिन

मुफ़्ती सद्रुद्दीन की अदालत थी। सुनकर हँस पड़े और महाजनों को अपने पास से रुपया दे दिया।"[12]

अपने ऊपर हँसने का माद्दा, घोर उपेक्षा और निन्दा के बीच शान्त रहने की अदा मिर्ज़ा की सदाशयता, साहस और विलक्षणता का ही प्रमाण हैं। यह ग़ालिब ही कह सकते हैं कि--

न सताइश[1] की तमन्ना न सिले[2] की परवा

न सही गर मेरे अशआर में मानी न सही

(1. प्रशंसा 2. प्रतिफल)

* * *

कुछ तो पढ़िए, कि लोग कहते हैं

आज 'ग़ालिब' ग़ज़लसरा[1] न हुआ (1. ग़ज़ल पढ़ने वाला)

ग़ालिब का व्यक्तित्व इतना विशाल है कि उसमें तुच्छ छींटाकशी और ओछी बातों के लिए कोई जगह नहीं बचती। उनका बड़प्पन है कि वह अपने को बुरा कहने वालों का भी बुरा नहीं चाहते। चुप रहते हैं और अपने में मगन रहते हैं। यगाना चंगेज़ी ने तो उनका मज़ाक उड़ाते हुए लिखा कि--

तोता भी हाफ़िज़े कलाम-ए-ग़ालिब

शाबाश अरे वाह रे जंगली बुद्धू

क़ुरआन या वेद में क्या रक्खा है

ग़ालिब का दीवान पढ़े जा मिट्ठू

मिर्ज़ा ईर्ष्या, द्वेष और अपमान का विष पी जाते हैं और इतना ही कहते हैं कि--

ग़ालिब बुरा न मान, जो वाइज़ बुरा कहे

ऐसा भी कोई है कि सब अच्छा कहें जिसे

अच्छे और बुरे की लड़ाई आदिकाल से चली आ रही है। इतिहास साक्षी है कि देर-सबेर अच्छा ही जीतता है, और जनता उसे ही सिर-माथे पर बिठाती है; और यह भी कि-- अच्छा यदि बुरा हो गया तो उसे धूल में भी मिला देती है। मिर्ज़ा को जनता ने अपने हृदय और कण्ठ में बसा लिया। आज भी सामान्य जन उनकी पंक्तियों को गाहे-बगाहे मुहावरे की तरह इस्तेमाल करता है। मसलन, 'ये न थी हमारी क़िस्मत', 'कोई सूरत नज़र नहीं आती', 'आख़िर इस दर्द की दवा क्या है', 'शर्म तुमको मगर नहीं आती', आदि। प्रगतिशील लेखक-अनुवादक शकील सिद्दीक़ी उनकी लोकप्रियता और व्यापकता पर लिखते हैं कि-- "... ग़ालिब की लोकख़्याति का सच है कि जितनी बहसें उन्हें लेकर हुईं और जितनी व्याख्याएँ उनकी शायरी की लिखी गयीं, दूसरों की नहीं हो पायीं। विराट हिन्दी क्षेत्र में तथा बांग्ला देश, पाकिस्तान सहित उर्दू की समूची अन्तर्राष्ट्रीय दुनिया में जितनी खपत ग़ालिब के दीवान की है, किसी दूसरी काव्य-पुस्तक की नहीं। दूसरी भाषाओं में रूपान्तरण की उन जैसी व्यापकता भी कम ही कवियों के हिस्से में आयी।"[13]

मिर्ज़ा ख्याति और बदनामी के बीच नया रास्ता ढूँढते रहे। उनकी ज़िन्दगी वर्तमान और अतीत के बीच की जबर्दस्त रस्साकशी रही है। अतीत उन्हें अपनी ओर खींचता है और वर्तमान अपनी ओर। वह वैभवशाली अतीत की वापसी चाहते हैं, लेकिन वर्तमान की चुनौतियों और सम्भावनाओं को नकारते नहीं हैं। उन्होंने सर सैयद अहमद को प्रेरित किया था कि वह साइंस और तालीम पर ध्यान दें। मुसलमानों को आधुनिक शिक्षा से जोड़ें और उन्हें धार्मिक जकड़बन्दी से बाहर निकालें। अकबर के आइन (क़ानून) की जगह, ब्रिटिश आइन की व्याख्या करें, लोगों को समझाएँ। सर सैयद अहमद ने उनकी मूल्यवान सलाह मानी और 1857 की पहली जंगे-आज़ादी की तबाही के बाद आधुनिक शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्तिकारी काम किया।

1857 के गदर में ग़ालिब ने भाग नहीं लिया था, लेकिन उसके भयानक परिणामों को देखा और भुगता था। अंग्रेज़ों ने भयंकर तबाही मचाई थी। लूटपाट और क़त्ले आम किया था। वह निरपराध इनसानों और देश की बरबादी से बहुत व्यथित थे। उनके पत्रों से, ग़ज़लों से पता चलता है कि अपने दुःख के साथ, वह देश के दुःख में भी शामिल थे। गदर के बाद मुसलमानों को सन्देह से देखा जाने लगा था। उन्हें नाहक परेशान और दण्डित किया जा रहा था। पूछ-ताछ और छान-बीन के सिलसिले में मिर्ज़ा को भी तलब किया गया। उन्हें घूरते हुए अधिकारी ने पूछा कि-- 'मुसलमान हो?' मिर्ज़ा ने जवाब दिया, 'आधा'। हकबकाये अधिकारी ने पूछा, 'क्या मतलब'? मिर्ज़ा बोले, 'शराब पीता हूँ, सुअर नहीं खाता!'। हँसते हुए अधिकारी ने उन्हें जाने दिया।

मिर्ज़ा के जवाब से स्पष्ट है कि वह धार्मिक पाखण्ड और कर्मकाण्ड के घोर विरोधी हैं। शराब पीने की स्वीकारोक्ति से साफ़ है कि निजी मामले में किसी का भी दखल उन्हें बर्दाश्त नहीं है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर अनावश्यक रोक-टोक, चाहे धार्मिक हो या राजनीतिक, उन्हें पसन्द नहीं। वह अपने अहं को छुपाते नहीं हैं, अपनी विशेषताओं का खुलकर प्रदर्शन करते हैं और अपनी कमियों पर भी परदा नहीं डालते हैं। वह ऐसा जीवन चाहते हैं जो हवा की तरह मुक्त हो, जल की तरह प्रवाहमान हो, प्रार्थना की तरह पवित्र और सुगन्ध की तरह धर्मनिरपेक्ष हो। वह किसी से बैर नहीं रखते। न किसी के समर्थन में हैं, न ही किसी के विरुद्ध। उनके दोस्तों में मुख़्तलिफ़ धर्मों के लोग हैं। धर्म जो इनसानियत की पैरवी करे, वह उसके गुण गाते हैं। 'बनारस' भी उनके लिए 'काबा' का दर्जा रखता है। बनारस पर मुग्ध होकर उन्होंने 'चिराग़-ए-दैर' (मन्दिर का दिया) नाम से एक फ़ारसी मसनवी लिखी, जिसमें वह कहते हैं कि-- "बनारस शंख बजाने वालों का आराधना-गृह है। इसे हिन्दुस्तान का 'काबा' ही समझिए। खुदा बनारस को बुरी नज़र से बचाए, यह उल्लास का भरपूर स्वर्ग है।"[14]

अफ़सोस! ग़ालिब की यह दुआ कुबूल नहीं हुई। 'उल्लास का स्वर्ग' मलिन होता रहा। ग़ैरों और अपनों के हाथों लुटता रहा। बुरी नज़र का शिकार होता रहा। लेकिन उसकी प्राचीनता और दिव्यता बनी रही।

ग़ालिब जिसे 'काबा' मानते थे, उसे भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी 'क्वेटा' बनाने में लगे हुए हैं। हाल ही में 'काशी विश्वनाथ कोरीडोर' का भव्य उद्घाटन हुआ। इस कोरीडोर ने बनारस की पुरानी, तंग, मगर जीवन से भरी गलियों को निगल

लिया। छोटी-मोटी दुकानों की महक और चहक की जगह कंकरीट के आभिजात्य सनसनाहट ने ले लिया। प्रधानमंत्री की चाहत है कि अब वहाँ जो भी बने वह 'फाइव स्टार' हैसियत का ही बने। अब यह जगह स्प्रिचुअल कम, कमर्शियल ज़्यादा हो गयी है। ग़ालिब का एक शेर याद आता है,

लोगों को है ख़ुरशीदे जहांताब[1] का धोखा

हर रोज़ दिखाता हूँ मैं इक दाग़े निहाँ[2] और

(1. सूर्य-किरण 2. छुपा हुआ)

बनारस ग़ालिब को इतना प्रिय था कि एक ख़त में उन्होंने मित्र को लिखा कि यदि जवानी में बनारस आया होता तो यहीं का हो जाता। पेंशन के सिलसिले में लगातार हुई यात्राओं में मिर्ज़ा नए अनुभवों से समृद्ध हुए। सन 1826 में वह कलकत्ता पहुँचे थे। वहाँ उन्होंने नयी और पुरानी सभ्यता के बीच के संघर्ष को देखा और समझा था। पूँजीवादी सभ्यता और औद्योगिक क्रान्ति ने प्राचीन उत्पादन सम्बन्धों को तहस-नहस कर दिया था। मशीनों, कल-कारख़ानों और पूँजीवादी उत्पादन पद्धति ने भारत के किसानों और कुटीर उद्योगों को गहरा धक्का पहुँचाया था। किसान अपनी ज़मीनें खोते चले गये और कारीगर बेरोज़गार और बदहाल होते चले गये। विश्व बाज़ार में हिन्दुस्तान उत्पादन, बाज़ार और वितरण के शीर्ष पर हुआ करता था। अब वह कहीं नहीं था। भारत अब कच्चे माल की विशाल मँडी में तब्दील हो चुका था, जिस पर पूरी दुनिया आँखें गड़ाये बैठी थी। अंग्रेज़ों की अन्तहीन लूट और अमानवीय शोषण ने भारतीयों को भौतिक और आत्मिक रूप से पस्त हिम्मत और निष्क्रिय कर दिया था। इन्हीं परिस्थितियों में भारतीय साहित्यकारों, कलाकारों, दार्शनिकों, चिन्तकों और विद्रोहियों ने नवजागरण का शंखनाद किया, जिसकी परिणति थी, 1857 का पहला जन-संग्राम।

1857 के जन-संग्राम में मिर्ज़ा ग़ालिब सम्मिलित नहीं थे, लेकिन उसके पीड़ादायी अनुभवों को अन्तरतम से महसूस किया था। उन्हें सिलसिलेवार डायरी में लिखा था। फ़ारसी में लिखी यह छोटी-सी डायरी 'दस्तम्बु' नाम से प्रकाशित हुई और विद्वत जगत में पर्याप्त चर्चित और सम्मानित हुई। 'दस्तम्बु' यानी पुष्प-गुच्छ। इस किताब में ग़ालिब ने 11 मई 1857 से लेकर 31 जुलाई 1857 तक की घटनाओं का काव्यात्मक और हृदयस्पर्शी चित्रण किया है। 'दस्तम्बु' मूल्यवान साहित्यिक दस्तावेज़ होने के साथ ऐतिहासिक दस्तावेज़ भी है। 'दस्तम्बु' में युग की वेदना के और ग़ालिब की व्यक्तिगत पीड़ा के दहकते और पुकारते हुए फूल हैं। मिर्ज़ा का एकाकी स्वर, दीगर स्वरों को अपने में मिलाकर, उसे अपने में ढालकर दर्द और चेतना की आधुनिक 'सिम्फ़नी' रचता है। यह 'सिम्फ़नी' आज भी गूँज रही है और आने वाली पीढ़ी के अदीबों और फ़नकारों को विभोर कर रही है, आगे का रास्ता दिखा रही है।

सन्दर्भ :-

1. लखनऊ की पाँच रातें, अली सरदार जाफ़री, पेपरबैक्स चौथा संस्करण, 2017, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, पृष्ठ 108।
2. दीवान-ए-ग़ालिब, अली सरदार जाफ़री, भूमिका, संस्करण, 1996, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ 2।
3. उपर्युक्त, पृष्ठ 11।
4. उर्दू साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, प्रोफ़ेसर सैयद एहतेशाम हुसैन, पेपरबैक संस्करण 2016, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 112।
5. ग़ालिब की शायरी, प्रस्तुति : साजन पेशावरी, संस्करण, 1999, मनोज पब्लिकेशन्स, दिल्ली, पृष्ठ 4,5।
6. उर्दू भाषा और साहित्य, फ़िराक़ गोरखपुरी, चतुर्थ संस्करण, 2008, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, पृष्ठ 112, 113।
7. उपर्युक्त, पृष्ठ 113।
8. उर्दू साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, प्रोफ़ेसर सैयद एहतेशाम हुसैन, पेपरबैक संस्करण 2016, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 112।
9. दीवान-ए-ग़ालिब, अली सरदार जाफ़री, भूमिका, संस्करण, 1996, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ 11।
10. उर्दू भाषा और साहित्य, फ़िराक़ गोरखपुरी, चतुर्थ संस्करण, 2008, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, पृष्ठ 104, 105।
11. उपर्युक्त, पृष्ठ 100।
12. उपर्युक्त, पृष्ठ 106।
13. पूछते हैं वो कि ग़ालिब कौन है?, शकील सिद्दीक़ी, साम्य अंक 25, दिसम्बर 1999, सम्पादक : विजय गुप्त, प्रगतिशील लेखक संघ, अम्बिकापुर, पृष्ठ 120।
14. उर्दू के प्रगतिशील शायर और उनकी शायरी, प्रो. वशिष्ट अनूप, प्रथम संस्करण, 2013, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ 59।

निगरानी पूँजीवाद का बढ़ता दायरा

इलेक्ट्रोनिक्स और सूचना तकनीक मंत्री राजीव चन्द्रशेखर ने कहा कि वीपीएन कम्पनियाँ अगर साइबर सुरक्षा दिशानिर्देशों का पालन नहीं करती हैं, तो वे "भारत छोड़ने के लिए स्वतंत्र" हैं। मंत्रालय के अनुसार प्राइवेट नेटवर्क उपलब्ध कराने वाली कम्पनियों को जून 2022 से अपने ग्राहकों के नाम, ईमेल आईडी, आईपी एड्रेस, सर्वर उपयोग करने का समय और उद्‌देश्य सम्बन्धी जानकारी पाँच साल तक सुरक्षित रखनी होगी।

इसके बाद नोर्ड वीपीएन, एक्सप्रेस वीपीएन, प्योर वीपीएन और पोपुलर वीपीएन जैसी कई कम्पनियों ने भारत से अपने सर्वर हटा लिये। प्योर वीपीएन कम्पनी के अध्यक्ष ने कहा कि हम अपने किसी भी उपयोगकर्ता का ऐसा कोई डाटा संरक्षित करके नहीं रखते हैं जिससे उसकी पहचान हो, हम अपने उपयोगकर्ता की प्राइवेसी और निजता से समझौता नहीं कर सकते। इसलिए हम भारत से अपने सर्वर हटा रहे हैं। दिग्गज कम्पनी नोर्ड वीपीएन ने कहा कि पहले भी तानशाही वाले अन्य देशों में इस तरह के कानून बने, जबकि भारत एक लोकतांत्रिक देश है, हम अपनी सेवाएँ लोकतांत्रिक देशों में ही देते हैं, लेकिन यह नया कानून लोकतान्त्रिक नहीं है इसलिए हम अपना सर्वर भारत से हटा रहे हैं। एक और कम्पनी शर्फशार्क का कहना है कि "सर्वर कम्पनियों का जाना भारत के उभरते आईटी सेक्टर के लिए भी अच्छा नहीं है"। 2004 से अब तक भारत में पच्चीस करोड़ से ज्यादा अकाउण्ट लीक हुए। शर्फशार्क ने यह भी चेतावनी दी कि बिना मजबूत सुरक्षा के इतनी भारी मात्रा में अकाउण्ट की जानकारियों को इकट्‌ठा करने से अकाउण्ट लीक होने की सम्भावना और ज्यादा बढ़ जायेगी।

नोर्ड वीपीएन जैसी दिग्गज कम्पनियों की भौतिक स्थित तो ऐसी है कि वह करोड़ों उपयोगकर्ताओं का डाटा इकट्‌ठा कर सकती हैं। पर उनकी नीतियाँ इसकी इजाजत नहीं देतीं। इसलिए उन्होंने भारत से अपना सर्वर हटा लिया। अब छोटी कम्पनियों की ऐसी हैसियत ही नहीं कि वह यूजर्स की सूचना को पाँच साल तक सुरक्षित रख सके। उसका लीक होना लगभग तय है। यह लीकेज कई बार लगता है सरकार के इशारे पर भी होता है। याद करिये भीमा कोरेगाँव वाला केस, जिसमें आरोपी फादर स्टेन स्वामी के कम्प्यूटर में उनके अकाउण्ट से छेड़छाड़ करके कुछ फाइलें रख दी गयी थीं, जो लम्बे समय से आदिवासियों के अधिकारों के लिए लड़ रहे थे। अकाउन्ट की इन फाइलों के ही आधार पर उनके ऊपर केस चला। उन फाइलों के आधार पर उन्हें माओवादी और देशद्रोही तक कहा गया।

इकोनोमिस्ट इण्टेलिजेंस यूनिट (ईआईयू) के अनुसार लोकतान्त्रिक मूल्यों में भारत 46 वें नम्बर पर है। स्वतंत्र पत्रकारिता के मामले में भारत का स्थान 150 वाँ है। पहले से ही ऐसी दयनीय स्थिति में मूर्छित पड़े भारतीय लोकतंत्र को मानो अब दफनाने की तैयारी चल रही है। भारतीय नागरिकों की निजता और नागरिक अधिकारों को लगातार कुचला जा रहा है। सरकार अपने निजी स्वार्थों को सिद्ध करने के लिए संविधान के उल्लंघन से भी बाज नहीं आ रही।

एक और उदाहरण मौजू है। 2 जुलाई 2022 को दिल्ली एअरपोर्ट पर कश्मीर की फोटो जर्नलिस्ट और पुलित्जर पुरस्कार जीतने वाली सना इरशाद मट्टू को आव्रजन अधिकारियों ने पेरिस जाने से रोक दिया। वह एक किताब विमोचन के सिलसिले में फ्रांस जा रही थीं। सितम्बर 2019 में कश्मीर के एक और पत्रकार गौहर गिलानी को आव्रजन अधिकारियों ने जर्मनी जाने से रोक दिया था। पिछले साल पत्रकार से शिक्षाविद बने जाहिद रफीक को कश्मीर के प्रशासन ने अमरीका जाने से रोक दिया था। उन्हें अमरीका जाकर एक यूनिवर्सिटी में भाषण देना था। पत्रकार रुवा शाह और अम्हेर खान को भी विदेशी यात्राओं से रोक दिया गया था।

आखिर निकट भविष्य में विश्वगुरु बनने वाले देश को ऐसा क्या डर है कि उसे अपने नागरिकों को विदेश यात्राओं से रोकना पड़ रहा है? यह डर तो तानाशाहों को होता है।

एक और घटना जिसने राज्य के अलोकतांत्रिक रवैये को पुष्ट किया है, वह है-- ऑल्ट न्यूज के संस्थापक मोहम्मद जुबैर को 2018 में किये गये एक ट्वीट की वजह से गिरफ्तार करना। मोहम्मद जुबैर के खिलाफ हिन्दू शेर सेना, जिला सीतापुर के प्रेसिडेण्ट ने एफआईआर लिखवायी थी। यूपी में धारा 295 ए और धारा 67 के तहत मुकदमा दर्ज हुआ। वहीं दिल्ली पुलिस ने धारा 120 बी (आपराधिक षड्यंत्र) धारा 201 (सबूत मिटने की कोशिश) और धारा 35 (विदेशी हाथ) के तहत मुकदमा दर्ज किया। मजेदार बात यह है कि जुबैर का ट्विटर अकाउण्ट भी आईटी सेल के ट्विटर पर बने हजारों फेक अकाउण्ट द्वारा टारगेट किया गया। लेकिन केस जुबैर के ऊपर चल रहा है।

पत्रकारिता की स्वतंत्रता के मामले में भारत पहले से ही निचले पायदान पर है। ऐसी घटनाओं से तो देश-दुनिया में और किरकिरी होगी। जर्मनी ने जुबैर की गिरफ्तारी पर सवाल उठाते हुए कहा है कि "भारत खुद को दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र बताता है। इसलिए कोई भी उम्मीद कर सकता है कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और प्रेस की स्वतंत्रता जैसे लोकतांत्रिक मूल्यों को वहाँ आवश्यक स्थान दिया जाएगा।..." जर्मनी के विदेश मंत्रालय के प्रवक्ता क्रिश्चियन वैगनर ने कहा, हम अक्सर दुनिया भर में

अभिव्यक्ति की आजादी पर जोर देते हैं और प्रेस की स्वतंत्रता को लेकर प्रतिबद्ध हैं। यह बहुत जरूरी है और यह भारत पर भी लागू होता है। किसी भी समाज के लिए यह जरूरी है कि वहाँ बिना किसी रोक-टोक और दबाव के पत्रकारिता हो, लेकिन ऐसा नहीं हो पाना चिन्ता का कारण है। उन्होंने कहा, पत्रकारों का उनकी पत्रकारिता के लिए उत्पीड़न नहीं होना चाहिए और ना ही इसके लिए उन्हें जेल में डाला जाना चाहिए। हम पत्रकार मोहम्मद जुबैर के मामले से वाकिफ हैं। नयी दिल्ली में हमारा दूतावास इस मामले पर करीब से नजर रखे हुए है।

अपने नागरिकों पर निगरानी का दायरा बढ़ाने के लिए सरकार ने पूरा मन बना लिया है। वह अपने विरोधियों को साम-दाम-दण्ड-भेद हर तरह से कुचलना चाहती है। उच्च तकनीक के इस दौर में इण्टरनेट और डिजिटल प्लेटफोर्म को सरकार अपने हित में इस्तेमाल करने की पूरी कोशिश कर रही है। वह नागरिकों की निगरानी चाहती है। सारी गतिविधियों पर नजर रखना चाहती है।

2019 में एक विधेयक पास हुआ जिसका उद्‌देश्य था-- “व्यक्तिगत डाटा से सम्बन्धित व्यक्तियों की गोपनीयता की सुरक्षा प्रदान करना और उक्त उद्‌देश्यों तथा किसी व्यक्ति के व्यक्तिगत डाटा से सम्बन्धित मामलों के लिए भारतीय डाटा संरक्षण प्राधिकरण की स्थापना करना”। ऐसा कोई प्राधिकरण बनाने में भारत सरकार असफल रही। उलटा वह सर्वर कम्पनियों से लोगों का व्यक्तिगत डाटा पाँच साल तक संरक्षित कराने के लिए कानून बना रही है। पाँच साल तक के लिए उस डाटा की सुरक्षा की जिम्मेदारी कौन लेगा? असल में यह अधकचरे लोकतंत्र का गला घोंटकर अदृश्य तानाशाही थोपने की तैयारी है। तकनीक के माध्यम से नागरिकों को नियंत्रित करने की तैयारी है। जिस तेजी के साथ भारतीय राज्य का रवैया बदल रहा है उसे देखते हुए निकट भविष्य में पूरी सम्भावना है कि नागरिकों की निगरानी के और भी कठोर कदम उठाए जाएँगे।

-- राजेश कुमार

कविता

कुछ करना था

आवारा और बरबाद तो हो ही चुका हूँ करीब-करीब।
यह दुष्ट नगर, अंतियोक, मुझे खा गया,
यह हत्यारा नगर और यहाँ की अय्याश जिन्दगी।
लेकिन अभी स्वस्थ और जवान तो हूँ।
ग्रीक भाषा का उस्ताद
(अरस्तु अफलातून को आद्योपान्त पढ़े हुए
वक्ता, कवि-- सभी कुछ तो हूँ)
फौजी मामलों में भी कुछ दखल रखता ही हूँ
कई बड़े-बड़े फौजी अफसर मेरे दोस्त हैं।
थोड़ा बहुत शासन भी जानता हूँ।
पिछले साल, छह महीने अलेक्जेंड्रिया में रहा था
और देखा कि कैसे घूस और दोस्ती वगैरह से काम निकलता है।
मैं तो समझता हूँ कि मैं हर तरह से
इस देश के लायक हूँ
मेरा प्यारा देश, सीरिया।
वे लोग जहाँ चाहें मुझे रखकर देख लें
देश का फायदा ही रहेगा।
मुझमें कोई कमी नहीं मिलेगी।
फिर भी, यदि उन्होंने मेरे रास्ते में अड़चनें डालीं--
तो इन अफसरों का इलाज मेरे पास है-- क्या,
अभी बताना जरूरी है?--
वे अगर मेरे रास्ते में आये तो अच्छा न होगा।
सबसे पहले तो जबीनास से बात करूँगा,
और अगर उस मूर्ख ने मेरी परवाह नहीं की,
तो उसके प्रतिद्वन्द्वी ग्राइपास के पास जाऊँगा,
और अगर उस गदहे ने भी मुझे काम नहीं दिया,
तो फौरन हाइरकेनस के पास
उन तीनों में से एक न एक तो मुझे चाहेगा ही
जहाँ तक मेरा सवाल है
मेरे लिए तीनों बराबर हैं
जहाँ तक सीरिया का सवाल है
उसके लिए तीनों बराबर से नुकसानदेह।
लेकिन मैं एक बरबाद आदमी, क्या करूँ।
मुझे तो किसी तरह अपना पेट पालना है।
विधाता ही कुछ करता, एक चौथा आदमी बनाता
जो ईमानदार होता।
बड़ी खुशी से मैं अपने आपको उसे सौंप देता।

-- कॉन्सटैन्टीन पी कवाफी

अनुवाद-- कुंवर नारायण

भाजपा नेता के फार्म हाउस पर चल रहे वेश्यालय पर छापा

बीते दिनों मेघालय के वेस्ट गारो हिल्स जिले में स्थित एक फार्म हाउस पर छापा मारकर पुलिस ने 6 नाबालिक बच्चों को छुड़ाया, जिन्हें फार्महाउस के एक गन्दे अंधेरे कमरे में बन्द करके रखा गया था। इनमें 4 लड़के और 2 लड़कियाँ थीं। इन बच्चों को वेश्यावृत्ति के उद्देश्य से फार्म हाउस में लाया गया था। यह फार्म हाउस मेघालय के भाजपा उपाध्यक्ष बर्नार्ड एन मराक का था। मराक और उसके सहयोगियों द्वारा वहाँ वेश्यालय चलाया जाता था। इस छापेमारी में 73 लोगों को गिरफ्तार किया गया, जिसमें 26 महिलाएँ भी हैं। तुरा स्थित फार्म हाउस पर चली छापेमारी के दौरान पुलिस ने 400 बोतल शराब, 500 कण्डोम और गर्भनिरोधक दवाइयाँ, 37 वाहन, 47 मोबाइल फोन, 30 हजार रुपये और आपत्तिजनक दस्तावेज बरामद किये।

कुछ समय पहले इसी घटना स्थल पर एक नाबालिग लड़की के यौन उत्पीड़न की खबर आयी थी। नाबालिग ने बताया था कि आरोपी ने एक सप्ताह में कई बार यौन उत्पीड़न किया था। इस मामले में आईपीसी की धारा 366-ए (नाबालिक लड़की खरीद), 376 (बलात्कार के लिए सजा) और पास्को अधिनियम के धाराओं के तहत मामला दर्ज कराया गया था। फार्म हाउस का मालिक राज्य भाजपा उपाध्यक्ष मराक पर पहले से ही 25 से अधिक आपराधिक मामले दर्ज हैं। वर्तमान में वह वेस्ट गारो हिल्स स्वायत्त जिला विकास परिषद का सदस्य है। सभ्यता, संस्कृति और विश्वगुरु बनने जैसे तमाम नारों के साथ सत्ता मे आने वाली भाजपा सरकार आज अपराधियों का अभ्यारण्य बन चुकी है। इनके नेता खुलेआम अपराध करते पाये जाते हैं। लखीमपुर में आन्दोलनकारी किसानों को गाड़ी से रौंदना हो या उत्तराखण्ड के एक किसान की छत से फेंककर हत्या करना, ऐसी तमाम खबरें अखबारों में आती रहती हैं। पुलिस प्रशासन द्वारा संघ-भाजपा के लम्पट तत्वों और गुण्डों को संरक्षण मिल रहा है जिससे ये घमण्डी आम जनता पर कहर बरपा रहे हैं। हिन्दू राष्ट्र के नाम पर इनके सारे गुनाह माफ हैं। यह स्थिति बेहद क्षोभजनक है।

कला कला के लिए

कला कला के लिए हो
जीवन को खूबसूरत बनाने के लिए
न हो
रोटी रोटी के लिए हो
खाने के लिए न हो

मज़दूर मेहनत करने के लिए हों
सिर्फ़ मेहनत
पूंजीपति हों मेहनत की जमा पूंजी के
मालिक बन जाने के लिए
यानि,जो हो जैसा हो वैसा ही रहे
कोई परिवर्तन न हो
मालिक हों
गुलाम हों
गुलाम बनाने के लिए युद्ध हो
युद्ध के लिए फ़ौज हो
फ़ौज के लिए फिर युद्ध हो

फ़िलहाल कला शुद्ध बनी रहे
और शुद्ध कला के
पावन प्रभामंडल में
बने रहें जल्लाद
आदमी को
फाँसी पर चढ़ाने लिए।

-- गोरख पाण्डेय

भाजपा शासित राज्यों में बुल्डोजर का बढ़ता आतंक

बीते जून महीने में एक सामाजिक कार्यकर्ता आफरिन फातिमा जिनका घर प्रयागराज में था, ढहा दिया गया। महज एक दिन की नोटिस चिपकाकर प्रशासन द्वारा इस घटना को अंजाम दिया गया। जब मकान गिराया जा रहा था, तब आफरिन और सुमाइया के पिता जेल में थे, जो वेल्फेयर पार्टी से जुड़े एक सक्रिय कार्यकर्ता रहे हैं, जिन्हे पुलिस ने इलाहाबाद में 10 जून को जुम्मे कि नमाज के बाद हुए कथित हिंसा की घटनाओं का मास्टरमाइण्ड घोषित कर गिरफ्तार किया था। प्रशासन द्वारा जो घर गिराया गया वह घर जावेद मोहम्मद की पत्नी के नाम पर पंजीकृत था। और सारा मेण्टेनेंस, बिजली बिल, पानी का बिल और हाउस टैक्स आदि उन्हीं के नाम पर आता था।

उत्तर प्रदेश में पिछले कई महीनों से प्रशासन द्वारा इस तरह की कार्रवाइयाँ लगातार जारी हैं। भाजपा कार्यकर्ता और यहाँ तक कि कई राष्ट्रीय मीडिया संस्थान भी इस सरकार को बुल्डोजर सरकार कहकर तारीफ कर रही है। गोदी मीडिया इन घटनाओं को योगी सरकार के सख्त रवैये और योगी आदित्यनाथ को एक बेहतरीन प्रशासक के रूप में पेश कर रही है। यही हाल कमोबेश सभी भाजपा शासित राज्यों का है। ऐसे में जनता में भयंकर आक्रोश दिखाई दे रहा है। सवाल यह है कि क्या देश में कानून का राज समाप्त हो गया है?

इस मामले में अहम प्रतिक्रिया उच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश गोविन्द माथुर की आयी, "सरकार का यह रवैया पूरी तरह से गैरकानूनी है"। वहीं संजय हेगड़े का कहना है कि "मौजूदा कानून में ऐसा कोई प्राविधान नहीं है कि किसी भी गलती या अपराध के लिए उसके घर पर बुलडोजर चलाया जाए"।

आज सरकारी दमन कितना ज्यादा बढ़ गया है! अंग्रेज जब शासन कर रहे थे तो उन्होंने किसी भी नामजद के घर को ढहाया या गिराया नहीं था। लेकिन आज राज्यों की भाजपा सरकारें इस तरह शासन कर रही हैं कि उनके आगे अंग्रेज शासक भी शर्मिन्दा हो जायें। अगर हम भाजपा शासित राज्यों पर निगाह डालें तो पता चलेगा कि लोगों के मकानों को आनन-फानन में बुलडोजर से गिरा देने के मामले में जबरदस्त बढ़ोत्तरी हुई है। और इसे कानून व्यवस्था का पर्याय बनाया जा रहा है। चाहे वह अन्तरधार्मिक विवाद हो या किसी विरोध प्रदर्शन में कथित तौर पर नामजद हो या किसी अपराधी को सबक सिखाना हो। बात यह है कि क्या तुरन्त न्याय देने वाली प्रणाली जिसमें आपसे न सवाल पूछे जायेंगे और न ही किसी अदालत की कार्रवाई की जायेगी और न किसी कानून से कोई मतलब होगा, बस आपके घर के किसी सदस्य को अपराधी घोषित करने के बाद, आपके घर के सामने बुलडोजर लाया जाएगा और आपके घर को गिरा दिया जाएगा।

बीती रामनवमी को मध्यप्रदेश में उग्र और भड़काऊ नारों के साथ भीड़ ने अल्पसंख्यक बाहुल्य इलाकों में हिंसा को अंजाम दिया। तुरन्त ही मध्यप्रदेश प्रशासन सक्रिय हो गया और उनका बुलडोजर पहुँच गया और अल्पसंख्यकों के अड़तालीस मकानों और दुकानों को गिरा दिया गया। सैकड़ों बच्चे, बूढ़े और जवान बेघर हो गये और रोजी-रोटी तक को मोहताज कर दिये गये। कुछ ऐसा ही मध्य प्रदेश में आसिफ खान के साथ घटित हुआ जिनका विवाह साक्षी साहू के साथ हुआ था। उनकी तीनों दुकानों को गिरा दिया गया और वे आर्थिक कंगाली की ओर धकेल दिये गये जबकि आसिफ की पत्नी ने खुद बयान जारी किया कि दोनों ने अपनी मर्जी से शादी की थी।

सर्वोच्च न्यायालय तथा बड़े-बड़े न्यायाधीशों के बार-बार इस प्रकार की घटनाओं को गैरकानूनी कहने के बावजूद भाजपा शासित सरकारों की कानों पर जूँ तक नहीं रेंगी और इस तरह की घटनाएँ बदस्तूर जारी हैं। जिस तरह मीडिया ऐसी घटनाओं पर ताली पीटकर खुशी मना रहा है और सरकार के ऐसे गैरकानूनी कामों को अच्छा बता रहा है, यह देश को आन्तरिक रूप से कमजोर करने के अलावा कहीं और नहीं ले जा सकता है। यह संविधान की एकता और अखण्डता की भावना पर कुठाराघात है। यह भारतीय समाज के लिए खतरे की घण्टी के समान है, जहाँ संगठित तौर पर एक समूह द्वारा दूसरे समूह की आर्थिक सामाजिक और धार्मिक भावनाओं पर हमला किया जा रहा है और अल्पसंख्यको को दोयम दर्जे का नागरिक बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

विभिन्न राज्यों की भाजपा शासित सरकारों और प्रशासन द्वारा लगातार कानून को अपने हाथ में लेने और न्यायपालिका की अनदेखी करने से संविधान और कानून व्यवस्था पर से जनता का विश्वास उठता जा रहा है। जहाँ एक ओर भाजपा शासित सरकारें प्रशासन की मदद से नामजद लोगों से न्याय का अधिकार छीन रही हैं, वहीं दूसरी ओर, यह संविधान द्वारा देश के नागरिकों को प्राप्त सम्पत्ति का अधिकार और जीने का अधिकार जैसे मूलभूत अधिकारों से भी उन्हें वंचित कर रही हैं।

आज देश राजनैतिक संकट से गुजर रहा है, जो आर्थिक संकट की कोख से पैदा हुआ है। देश के शासक वर्गों और उनकी विभिन्न राजनीतिक पार्टियों के पास देश को आगे बढ़ाने और

विकास के रास्ते पर ले जाने का कोई समाधान नहीं है। बढ़ती बेरोजगारी, सामाजिक असुरक्षा आदि वास्तविक मुद्‌दों को हल करने का इनके पास कोई रास्ता नहीं है। यही वजह है कि ये देश में धार्मिक असहिष्णुता और ध्रुवीकरण का माहौल पैदा कर देश की जनता को मुख्य मुद्‌दों से भटकाना चाहते हैं। एक ओर मुट्‌ठीभर धन्नासेठों की सम्पत्ति बढ़ रही है, वहीं दूसरी ओर जनता भूखों मरने की कगार पर है। कोई सरकार की गलत नीतियों पर सवाल करता है तो उसे डराने-धमकाने के लिए वे अपना बुल्डोजर लेकर आ जाते हैं। इतिहास गवाह है कि कोई भी दमनकारी व्यवस्था अनन्त काल तक नहीं रहती, जनता द्वारा लगातार बढ़ते जुझारू संघर्षों ने पहले भी ऐसी दमनकारी सत्ताओं को नेस्तनाबूत किया है। इतिहास दुबारा दोहराया जाएगा और जालिम शासकों को राज सिंहासन से उतार फेंका जायेगा।

-- उत्कर्ष

कविता

हम सभी या कोई नहीं

गुलाम, कौन आजाद करेगा तुम्हें?
वे जो गहरे अँधेरे में पड़े हैं।
कॉमरेड, केवल ये ही आपको देख सकते हैं
केवल वे ही आपको रोते हुए सुन सकते हैं।
कॉमरेड, केवल गुलाम ही आपको आजाद कर सकते हैं।
सबकुछ या कुछ भी नहीं। हम सब या कोई नहीं।
एक अकेले की किस्मत बेहतर नहीं हो सकती।
या तो बन्दूक या बेड़ी।
सबकुछ या कुछ भी नहीं। हम सब या कोई नहीं।

तुम जो भूखे हो, तुम्हें कौन खिलाएगा?
अगर यह रोटी है तो उसे तुम तराश रहे होगे,
हमारे पास आओ, हम भी भूखे मर रहे हैं।
हमारे पास आओ और हमें अगुआई करने दो।
केवल भूखे आदमी ही तुम्हें खिला सकते हैं।
सबकुछ या कुछ भी नहीं। हम सब या कोई नहीं।
एक अकेले की किस्मत बेहतर नहीं हो सकती।
या तो बन्दूक या बेड़ी।
सबकुछ या कुछ भी नहीं। हम सब या कोई नहीं।

मार खाए आदमी, तुम्हारा बदला कौन लेगा?
तुम, जिस पर हमले हो रहे हैं लगातार,
अपने घायल भाइयों की पुकार सुनो।
कमजोरी हमें तुम्हारी मदद की ताकत देती है।
हमारे पास आओ, हम तुम्हारा बदला लेंगे।
सबकुछ या कुछ भी नहीं। हम सब या कोई नहीं।
एक अकेले की किस्मत बेहतर नहीं हो सकती।
या तो बन्दूक या बेड़ी।
सबकुछ या कुछ भी नहीं। हम सब या कोई नहीं।

कौन, अरे अभागे, इसकी हिम्मत करेगा?
वह जो अब इसे बर्दाश्त नहीं कर सकता।
उन हमलों का हिसाब लगता है
ताकि हथियारबन्द हो उसकी रूह।
वक्त ने जरूरत और गम के जरिये सिखाया,
हमला कल नहीं आज।
सबकुछ या कुछ भी नहीं। हम सब या कोई नहीं।
एक अकेले की किस्मत बेहतर नहीं हो सकती।
या तो बन्दूक या बेड़ी।
सबकुछ या कुछ भी नहीं। हम सब या कोई नहीं।

--बर्तोल्त ब्रेख्त

भाजपा शासित राज्यों की पुलिस का दमनकारी रवैया

दो आदिवासी युवकों की संगठित हत्या के विरोध में आदिवासी संगठनों के नेतृत्व में 5000 आदिवासियों ने जबलपुर हाईवे जाम कर दिया। घटना इस प्रकार थी कि मध्यप्रदेश में बीते मई के महीने में शिवनी जिले में दो आदिवासी युवकों की हत्या कुछ हिन्दुत्ववादी संगठनों द्वारा कर दी गयी, जिसका वीडियो खुद इन हिन्दुत्ववादी संगठनों ने बनाया था। बढ़ते आन्दोलन के दबाव के चलते प्रशासन को कार्रवाई करनी पड़ी। जाँच में पता चला कि हत्या को अंजाम देने वाले आरोपी हिन्दुत्ववादी संगठन के सदस्य हैं। इंडियन एक्सप्रेस के रिपोर्टर से बातचीत के दौरान शिवनी पुलिस अधीक्षक ने स्वीकार किया कि वे लम्बे समय से इन संगठनों के सम्पर्क में हैं। संगठन के कई सदस्य पुलिस के लिए मुखबिरी का भी काम करते हैं।

ऐसी ही घटना जुलाई 2021 में उत्तर प्रदेश के महाराजगंज जिले में सामने आयी थी। जिले के नौतनवा में एक छोटी सी इलेक्ट्रीशियन की दुकान चलाने वाले अहमद को पुलिस ने देशद्रोह के आरोप में गिरफ्तार कर लिया था। इसमें भी कानून व्यवस्था बनाये रखने वाले प्रशासक और हिन्दुत्ववादी संगठन के अध्यक्ष में अन्तर कर पाना मुश्किल था। पीड़ित अहमद ने बताया कि जब उसे थाने ले जाया गया, तब थाने में पहले से ही बीस के करीब हिन्दू युवा वाहिनी के सदस्य बैठे थे जो उसे देखते ही "जय श्री राम" के नारे लगाने लगे। इसके बाद हिन्दू युवा वाहिनी का अध्यक्ष थाना प्रभारी से बात करने लगा। उसी ने अहमद पर सरकार को अस्थाई करने और देश की एकता अखण्डता को नुकसान पहुँचाने जैसी धाराओं में मुकदमा करवाया था। इसी हिन्दू युवा वाहिनी अध्यक्ष ने एक इण्टरव्यू के दौरान स्वीकार किया कि उसने जिले के विभिन्न थानों में ऐसे कई मामले दर्ज करवाये हैं। उसका कहना था कि यदि कोई भी योगी जी महाराज के फैसलों या उनकी संस्था के खिलाफ बोलेगा, उस पर हम ऐसे ही मामले दर्ज करेंगे। इसे देखकर तो ऐसा लगता है कि योगी जी के मुख्यमंत्री बनने के बाद हिन्दू युवा वाहिनी का मुख्य काम गैर हिन्दुओं के खिलाफ मुकदमे दर्ज करवाना बन गया है।

2014 में मोदी सरकार के सत्ता में आने के बाद ऐसी घटनाओं की देश में लगातार वृद्धि हुई है। खासकर उन राज्यों में जहाँ सत्ता की बागडोर भाजपा के हाथों में है। साल दर साल ऐसे राज्यों में इन घटनाओं की वृद्धि हुई है जहाँ प्रशासन और हिन्दुत्ववादी संगठनों में गठजोड़ देखा गया है और यह अन्तर नहीं किया जा सकता की इनमें कौन प्रशासन का व्यक्ति है और कौन सरकारी वर्दी पहने हिन्दुत्ववादी संगठन का सदस्य। चाहे वह दिल्ली में हिंसा के दौरान पुलिस द्वारा सीसीटीवी कैमरा तोड़ने की घटना हो या सीएए-एनआरसी आन्दोलन के दौरान एक हिन्दुत्ववादी संगठन के सदस्य द्वारा पुलिस के सामने हवा में बन्दूक लहराने और चलाने की घटना हो।

इन सभी घटनाओं के केन्द्र में जहाँ एक ओर समाज के पीड़ित, शोषित, वंचित, अल्पसंख्यक और महिलाएँ हैं, वहीं दूसरी ओर समाज के वे लोग हैं जो किसी न किसी रूप में भाजपा सरकार और इसकी नीतियों के आलोचक हैं, चाहे वे राजनीतिक सामाजिक कार्यकर्ता हों या पत्रकार या विपक्षी पार्टी से जुड़े कार्यकर्ता। हालत तो यह है, कि अब व्यक्ति को ही नहीं बल्कि पूरे समुदाय तक को भाजपा नेता और उसके कार्यकर्ता देशद्रोही, विकास द्रोही आदि घोषित कर देते हैं। कुछ ऐसा ही किसान आन्दोलन के दौरान किसानों, सीएए-एनआरसी के आन्दोलनकारियों तथा अग्निपथ योजना में सेना की तैयारी करने वाले देश के युवाओं के साथ हुआ।

भारत में धार्मिक ध्रुवीकरण तेजी से हुआ है और मुस्लिमों के खिलाफ संगठित हमले हुए हैं, जो आज भी बदस्तूर जारी हैं। ये हमले बढ़ते-बढ़ते कुलबर्गी, गौरी लंकेश आदि सामाजिक कार्यकर्ताओं और पत्रकारों तक पहुँच गये। ऐसी घटनाएँ लगातार बढ़ती जा रही हैं। ऐसा ही असम के नागांव में दो कलाकारों के साथ हुआ, जो शिव और पार्वती का पात्र अदा कर रहे थे, जिन्होंने अपने नाटक में महँगाई का मुद्दा उठाया था। इस पर हिन्दुत्ववादी संगठन विश्व हिन्दू परिषद और भारतीय जनता युवा मोर्चा ने दोनों कलाकारों पर धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाने और दुर्भावनापूर्ण कृत्य जैसी धाराओं में केस दर्ज करवाया।

फासीवादी हिटलर का आतंक जर्मनी में आर्थिक संकट की पैदाइश था और वह समाज के सबसे प्रतिक्रियावादी, पतित, और प्रतिगामी वर्ग का राजनीतिक प्रतिनिधि था। हमारा देश भी आर्थिक संकट से गुजर रहा है। हिन्दुत्ववादी संगठन और सरकारें भी उसी राह पर चल रही हैं। इनके निशाने पर समाज की सभी प्रगतिशील और लोकतांत्रिक संस्थाएँ, संगठन और व्यक्ति हैं। ऐसा लगता है कि हिटलर की नस्लवादी और विभाजनकारी सत्ता से सरकारें बहुत कुछ सीख रही हैं, लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हिटलर का अन्त बहुत दुखद हुआ था।

-- अभिषेक

भारत देश बना कुष्ठ रोग की राजधानी

कल्पना कीजिए, एक रोज आपकी आँख खुले और आपकी नजर शरीर के उस सफेद धब्बे पर पड़े जिसे आपने पहले कभी नहीं देखा, देखते ही देखते यह सफेद हिस्सा, बेजान हो जाए और आपकी जिन्दगी को बेरंग कर दे।

किसी भयावह कहानी सा प्रतीत होता है?

यह भयानक कहानी इस आधुनिक युग में भी हजारों कुष्ठ रोगियों के लिए वास्तविकता है। कुष्ठ रोग के लक्षण एक साल में ही दिखने लगते हैं जिसमें शरीर का प्रभावित हिस्सा सुन्न पड़ जाता है, मरीज को कमजोरी का एहसास होता है और अन्त में मांसपेशियों में फालिस मार जाती है। यदि लम्बे समय तक इलाज न मिले तो यह संक्रमण फैलने लगता है। लम्बे समय तक रोगी के लगातार सम्पर्क में रहने से साँस के जरिये यह रोग दूसरे के शरीर में जा सकता है। लेकिन सवाल यह है कि रोगियों को लम्बे समय तक क्यों इलाज उपलब्ध नहीं हो पा रहा है? विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार पूरे विश्व के साठ प्रतिशत कुष्ठ रोगी भारत में हैं। हालाँकि, 2015 में ही आधिकारिक तौर पर भारत, कुष्ठ रोग से खुद को मुक्त घोषित कर चुका है। लेकिन क्या वजह है, कि इतने वर्ष बाद, हमारा देश कुष्ठ रोग की राजधानी बन बैठा है?

क्या लेपोरेसी यानी कुष्ठ रोग को गरीबी में अपना घर बनाना ज्यादा रास आता है? 'पोलिगइया-- द ग्लोबल हेल्थ थिंक टैंक' और 'एनसीबीआई' की रिपोर्ट माने तो इसका उत्तर है, 'हाँ'।

कुष्ठ रोग के पनपने के लिये जो वातावरण, खराब स्तर की शौच प्रणाली और गन्दगी जिम्मेदार है, वह इन्हीं देशों में आसानी से मौजूद है। यहाँ बहुतायत जनता भयंकर गरीबी में अपना जीवन बसर करने को मजबूर है।

कुष्ठ रोग त्वचा, श्वसनतंत्र, बाहरी तंत्रिकाओं, आँखों आदि को प्रभावित करता है। शोध के अनुसार कुष्ठ रोग के कीटाणु मिट्टी की ऊपरी सतह, वायु और पानी में सक्रिय रहते हैं। जो मजदूर इन परिस्थितियों में काम करते हैं और इसी से अपना गुजारा चलाते हैं, वे कोढ़ से संक्रमित हो सकते हैं। भयंकर गरीबी और आर्थिक तंगी के चलते उसे इलाज नसीब नहीं होता। ऐसे में वह कुष्ठ के जीवाणुओं का घर बनने को मजबूर हो जाता है।

अगर वह इलाज कराना भी चाहे तो उसकी आय का स्रोत नहीं है। ऐसे में यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि कुष्ठ रोग न सिर्फ गरीबी में पनपता है बल्कि गरीबी ही इसे जन्म देती है।

भारत में कुष्ठ रोग की जड़ें इतनी गहरी हैं कि इसका छोर पकड़ना मुश्किल है। 'लाइव साइंस' के अनुसार चार हजार वर्ष पुराने भारतीय कंकाल में कुष्ठ रोग के प्राचीनतम पुरातात्विक साक्ष्य मिले हैं। तब से लेकर आज तक, विश्व स्वास्थ संगठन (डब्लूएचओ) और इण्टरनेशनल फेडरेशन ऑफ एण्टी-लेप्रोसी एशोसीएशन (आईएलईपी) के साथ मिल कर भारत सरकार ने इस रोग की रोकथाम में अनेक प्रयास किये, जो काफी हद तक सफल भी रहे। जहाँ 1983 में इस बीमारी का प्रसार दर चार हजार में से दो सौ इकतीस थी, वहीं 2005 में मल्टीड्रग थेरेपी की सहायता से, प्रसार दर में प्रभावशाली गिरावट आयी और यह प्रसार दर चार हजार में मात्र तीन रह गयी। लेकिन चौदह साल बाद यह समाप्तप्राय बीमारी अचानक अपने पंजे फैला कर देशभर के मेहनतकशों को अपने शिकंजे में कैसे दबोचने लगी?

इसका कारण है, 2015 में मोदी सरकार का इस पर लिया गया फैसला। 2015 में मोदी सरकार ने कुष्ठ रोग को अपने लक्षित मिशन से हटा दिया, जो इस रोग की रोकथाम के लिए था। इसका समाज पर कितना गहरा परिणाम होना था, यह सत्ता और उसके प्रपंच बखूबी समझते हैं। सब जानते हुए भी 2015 के सरकारी बजट में सरकार ने कुष्ठ रोग की रोकथाम के मद में जो पैसा आवंटित होना था, उसमें भारी कमी कर दी।

मोदी सरकार के फैसले और उसकी कुष्ठ रोग के प्रति कुंठित सोच ने ही आज देश को इस मुँहाने पर ला दिया है। डब्लूएचओ की रिपोर्ट के अनुसार 2022 में भारत में कुष्ठ रोग के अट्ठावन प्रतिशत नये मामले आये, जिसमें कुल एक लाख सत्ताइस हजार पाँच सौ सत्तावन रोगियों में से, आठ हजार छः सौ उनतीस मासूम बच्चे हैं। यह बात तो साफ है कि मल्टीड्रग थेरेपी के बाद कोई भी शिशु माँ के गर्भ से कुष्ठ रोग लेकर जन्म नहीं ले सकता, फिर क्यों पाँच से पन्द्रह साल कि आयु में देश का भविष्य कुष्ठ रोग से संक्रमित है? इसका कारण कुपोषण, बच्चों में बेहद कम होती प्रतिरोध क्षमता, और इस समाज में इनसानों को पशुओं के हालात में जीने के लिए मजबूर करने वाली यह व्यवस्था है।

जब तक दुनिया के किसी भी देश में मानव केन्द्रित व्यवस्था की जगह मुनाफा केन्द्रित व्यवस्था रहेगी और स्वास्थ्य मुनाफा कमाने का साधन बना रहेगा, तब तक सिर्फ बीमारियों के लक्षण का इलाज होगा बीमारी का नहीं। जब तक ऐसी व्यवस्थाएँ रहेंगी दुनिया की बहुतायत जनता गरीबी और बदहाली में जियेगी और कोढ़ जैसी बीमारियाँ मेहनतकश का खून चूसती रहेंगी। इन व्यवस्थाओं का खात्मा ही ऐसी बीमारियों की ताबूत में अन्तिम कील ठोक सकता है।

-- साक्षी शैबी

मौत के घाट उतारती जोमैटो की 10 मिनट 'इंस्टेण्ट डिलीवरी' योजना

हाल ही में ऑनलाइन फूड डिलीवरी कम्पनी जोमैटो के संस्थापक दीपिन्दर गोयल ने 'इंस्टेण्ट डिलीवरी' नामक योजना की घोषणा की है। इस योजना के तहत उन्होंने पहले चली आ रही 30 मिनट में खाना डिलीवर करने वाली सेवा को अब सिर्फ 10 मिनट में पूरा करने की गारण्टी दी है। यह सेवा सुनने में बहुत अच्छी लग सकती है क्योंकि ग्राहक अपना आर्डर जल्दी से जल्दी मँगाना चाहता है। लेकिन इतने कम समय में डिलीवरी करना कोई आसान काम नहीं है। इन गिग कर्मचारियों पर तय समय सीमा में डिलीवरी न करने पर आर्थिक दण्ड और नौकरी तक जाने का दबाव हमेशा बना रहेगा। इस मानसिक दबाव में कितने ही डिलीवरी करने वाले कर्मचारी हर रोज दुर्घटनाओं का शिकार हो रहे हैं।

आज ऑनलाइन फूड डिलीवरी के कारोबार में जोमैटो, स्विगी, ईस्टामार्ट, डुन्जो, जेप्टो आदि कम्पनियों में अकूत मुनाफा कमाने की होड़ लगी हुई है। इसी होड़ में आगे बढ़ने के लिए जोमैटो ने यह योजना शुरू की है जिसे देखकर अन्य कम्पनियों ने भी इसकी शुरआत कर दी है। रिसर्च फोरम रेडसीर के मुताबिक 'क्विक कॉमर्स मार्केट' यानी 10 से 12 मिनट में डिलीवरी करने का चलन तेजी से बढ़ा है। साल 2021 में यह कारोबार 0.3 अरब डॉलर का था जिसका 2025 तक बढ़कर 5 अरब डॉलर तक होने का अनुमान है। लेकिन कारोबारियों के इस मुनाफे की कीमत गिग मजदूर अपनी जान देकर चुका रहे हैं। ये गिग मजदूर रोज-ब-रोज सामाजिक भेदभाव का भी सामना करते हैं। कितनी ही बार इन्हें सही रेटिंग के दबाव में ग्राहकों के अमानवीय व्यवहार को भी सहना पड़ता है। हाल ही में लखनऊ के एक ग्राहक ने डिलीवरी ब्वॉय के सिर्फ दलित होने के कारण उससे खाना लेने से मना कर दिया था। डिलीवरी ब्वॉय ने जब उसे खाना देने की कोशिश की तो वहाँ मौजूद लोगों ने उसके साथ मारपीट तक की और उसका अपमान करते हुए उसके मुँह पर थूक दिया। यह अमानवीय व्यवहार किसी के लिए भी मानसिक तनाव पैदा करने वाला हो सकता है। इसी मानसिक तनाव में सुबह से शाम तक यह काम करते हैं। जिस कारण बड़ी संख्या में इनके दुर्घटनाग्रस्त होने की खबरें आ रही हैं।

डिलीवरी करने के लिए इस्तेमाल किये जाने वाले दोपहिया वाहन भी इन डिलीवरी ब्वॉयज के अपने निजी होते हैं। इनमें आधे से ज्यादा वाहन डिलीवरी करने की स्थिति में नहीं हैं। कम्पनियों ने ना तो अच्छे वाहन उपलब्ध कराये और न ही इन गिग वर्करों के लिए जीवन बीमा कराया। दुर्घटनाग्रस्त होने के बाद इन्हें अपने पैसों से ही इलाज करवाना पड़ता है।

भारत में भयंकर बेरोजगारी के कारण नौजवान इन कम्पनियों में बेहद खराब शर्तो पर काम करने को मजबूर हो रहे हैं। इन गिग कर्मचारियों पर कोई श्रम कानून भी लागू नहीं होता, जिससे यह अपने ऊपर होने वाले शोषण और उत्पीड़न के खिलाफ कानूनी कार्रवाई भी नहीं कर सकते हैं। इन्हीं चीजों का फायदा उठाकर एक तरफ कम्पनी करोड़ों की कमाई कर रही है, वहीं दूसरी ओर अपनी जान पर खेलकर काम करने वाले कर्मचारियों को सिर्फ 8-10 हजार रुपये का मासिक वेतन दिया जा रहा है।

-- गौरव कुमार

पेज 46 का शेष...

ज्ञान की देवी तो सरकार से ऐसे रूठ गयी की सरकारी स्कूलों का रूख ही नहीं कर रही। निजी विद्यालयों में जा बैठी है। और जाते भी क्यों न, सरकार आरटीई लागू करके भला जो कर रही है। वैसे सरकारी विद्यालयों की स्थिति में सुधार करते तो ना भक्त कम पड़ते ना पुजारी नदारद रहते। तो पढ़ने के लिए भी अब देहरादून दूर नहीं।

यहाँ बुनियादी समस्याओं का जिक्र किया गया है। तो ऐसे में क्या करें गाँव के लोग?

अब बात करते हैं उन लोगों की जो पलायन करके शहर में जीवन जी रहे हैं या ठेल रहे हैं! क्योंकि गाँव में रह रहे लोगों को, शहर का रूख कर चुके लोगों के पलायन के विषय में कुछ भी कहने से बड़ी चिढ़ होती है। जैसे कोई बाघ के मुंह में हाथ डाल ले। क्योंकि गाँव वालों को लगता है, शहर जा चुके लोग मौजा ही मौजा वाली धुन में थिरक रहे हैं। जबकि वास्तव में सबके हालात वैसे नहीं हैं। कुछ तो इस तकलीफ को बयान तक नहीं कर पाते क्योंकि उनकी शान में गुस्ताखी हो जायेगी। कुछ अपवादों को अगर छोड़ दिया जाए तो पलायन ज्यादातर लोगों के लिए सजा ही है।

वैसे पलायन भी आदमी अपनी गुंजाइश के हिसाब से करता है। गाँव का आदमी देहरादून, दिल्ली आदि बड़े शहरों के लिए पलायन कर रहा है। बड़े शहरों के लोग विदेशों के लिए पलायन कर रहे हैं तो वहीं विदेशी यहाँ के लिए पलायन कर रहे हैं। और ये मुद्‌दा चरम पर तो है पर ज्यादा गर्म नहीं हो पाता है। और सब इस कटु सत्य को भी पचाने में लगे हैं कि, दुनिया गोल है जहाँ सब पलायन करके गोल गोल घूम रहे हैं।

स्विस बैंक में जमा भारतीय कालेधन में 50 फीसदी की बढ़ोतरी

पिछले दिनों स्विट्जरलैण्ड के केन्द्रीय बैंक 'एसएनबी' ने अपने बैंकों में जमा विदेशी लोगों के पैसों के विवरण से सम्बन्धित एक रिपोर्ट जारी की है। इस रिपोर्ट से यह खुलासा हुआ है कि भारतीयों के जमा धन में 50 फीसदी की अभूतपूर्व बढ़ोतरी हुई है। रिपोर्ट के अनुसार 2020 के अन्त में यह जमा राशि बीस हजार सात सौ करोड़ रुपये थी जो अब बढ़कर तीस हजार पाँच सौ करोड़ रुपये के पार पहुँच गयी है। सरकार पिछले समय से काले धन को नियंत्रित करने की बड़ी-बड़ी घोषणाएँ कर रही है, लेकिन इस रिपोर्ट ने सरकार के इन सभी दावों की पोल खोल दी है।

भाजपा ने 2014 के लोकसभा चुनाव में काले धन को एक बड़ा मुद्दा बनाया था। साथ ही यह वादा किया था कि उनकी सरकार बनते ही वह विदेशों में जमा कालाधन भारत वापस लाकर उसमें से सभी भारतीयों को 15-15 लाख रुपये देंगे। इन्होंने देश की गरीब जनता को इस काले धन से भारत को स्वर्ग बनाने का सपना दिखाया था। लेकिन यह केवल वोट पाने के लिए एक जुमला ही साबित हुआ है। 2014 में सत्ता मिलने के बाद भाजपा अपने हर वादे से मुकर गयी और काला धन वापस लाना तो दूर बल्कि और तेजी से देश से लाखों-करोड़ रुपये काले धन के रूप में विदेश जाने लगा है। मोदी सरकार ने साल 2016 में नोटबन्दी की थी जिसका मुख्य कारण काले धन का सफाया करना बताया गया था। लेकिन इसकी आड़ में उद्योगपतियों और मंत्रियों के लाखों करोड़ रुपये काले धन को सफेद किया गया और आम जनता को अपने पैसे निकालने के लिए कितने ही कष्टों का सामना करना पड़ा था।

जिस दौरान देश की बहुसंख्यक आबादी कोरोना महामारी में बेरोजगारी और भुखमरी से बदहाल थी उसी समय यह काला धन अभूतपूर्व तरीके से बढ़ा। यह साफ दर्शाता है कि मेहनतकश जनता की जेब खाली करके एक वर्ग मालामाल हो रहा है।

पिछले समय से देश में गहराता आर्थिक संकट भी इसका एक कारण हो सकता है। इस आर्थिक संकट की चपेट में आकर पिछले सालों में कितने ही बैंक बर्बाद हो गये हैं। अक्सर सरकार गलत प्रबन्धन का बहाना बनाकर आम जनता से असली तस्वीर छुपा लेती है। लेकिन धन्नासेठ, राजनेता और बड़े अफसर यह सच्चाई जानते हैं, इसलिए पिछले समय में अपनी लूट के पैसों को बचाने के लिए इन्होंने भारतीय बैंकों से अपने पैसे निकालने शुरू कर दिये हैं। आर्थिक संकट का बोझ हमेशा की तरह आज भी आम मेहनतकश जनता पर ही डाला जा रहा है। एक तरफ आम जनता बढ़ती महँगाई और बेरोजगारी के कारण तिल-तिल कर मरने को मजबूर हो रही है, वहीं दूसरी तरफ राजनेता, बड़े अभिनेता, उद्योगपति जनता को लूटकर नोटों के रोज नये जखीरे खड़े कर रहे हैं। स्विस बैंक ने कितनी ही बार इनके नाम सरकार को दिये हैं लेकिन कालेधन को खत्म करने का डंका पीटने वाली सरकार ने एक बार भी यह नाम सार्वजनिक नहीं किये। आखिर जनता के इन दुश्मनों से मोदी सरकार की क्या यारी है? कुछ तो है जिसकी पर्दादारी है।

-- आकाश

पेज 39 का शेष...

एम्स में डॉक्टरों के एक तिहाई पद रिक्त हैं। देश के नये एम्स की स्थिति का अंदाजा इसी बात से लगा सकते हैं। यही हाल केंद्रीय विश्वविद्यालयों का भी है। राज्य सरकारों के उच्च शिक्षा संस्थानों इससे भी बड़ी मुश्किल में संचालन कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में विश्वविद्यालय केवल शिक्षा ही दे रहा हो या शिक्षा और शोध दोनों पर कार्य कर रहा हो, उससे शिक्षा की गुणवत्ता की अपेक्षा व्यर्थ होगी।

बीजेपी सरकार 75 संकल्पों पर बात न करके लोगों का ध्यान भटकाने के लिए हर घर तिरंगा अभियान चला रही है। भाजपा बुनियादी मुद्दों से कोसों दूर है। लोगों का ध्यान बुनियादी मुद्दों पर न चला जाये इसके लिए बेफिजूल के मुद्दे गढ़े जाते हैं। जब देश भुखमरी के मामले में पाकिस्तान, नेपाल, बांग्लादेश और श्रीलंका से भी खराब स्थिति में हो, गरीबी बेतहाशा बढ़ रही हो, किसान-नौजवान लगातार आत्महत्या कर रहे हों, पर्यावरण की स्थिति बेहद गम्भीर हो, अर्थव्यवस्था डाँवाडोल हो, अपराध दिन-प्रति-दिन बढ़ रहे हो, महिलाएँ सबसे ज्यादा असुरक्षित हो, महँगाई पिछले 8 सालों के उच्चतम स्तर पर हो तो आजादी का अमृत महोत्सव मनाने से बड़ा अपराध कोई नहीं। हर घर तिरंगा अभियान जख्मों पर नमक छिड़कने के अलावा और कुछ नहीं है।

-- नवनीत

वैश्विक लिंग असमानता रिपोर्ट

ये आँखें हैं तुम्हारी
तकलीफ का उमड़ता हुआ समुन्दर
इस दुनिया को
जितनी जल्दी हो बदल देना चाहिये।

--गोरख पाण्डेय

किसी देश-समाज की खुशहाली या बदहाली को जानना हो तो वहाँ महिलाओं और बच्चों की हालत देखकर आसानी से समझा जा सकता है। आजादी के अमृत महोत्सव मनाते देश में लैंगिक समानता के मामले में दुनियाभर में भारत का स्थान अत्यन्त चिन्ता और क्षोभ का विषय है।

हाल ही में जिनेवा में जारी वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम (डब्ल्यूईएफ) की वार्षिक जेण्डर गैप रिपोर्ट 2022 के अनुसार, लैंगिक समानता के मामले में भारत 135वें स्थान पर है। 146 देशों के सूचकांक में केवल 11 देश भारत से नीचे हैं, जिनमें अफगानिस्तान, पाकिस्तान, कांगो, ईरान और चाड सबसे खराब पाँच देशों में हैं। आइसलैण्ड ने दुनिया के सबसे अधिक लिंग-समान देश के रूप में अपना स्थान बरकरार रखा है, इसके बाद फिनलैण्ड, नॉर्वे, न्यूजीलैण्ड और स्वीडन का स्थान है। रिपोर्ट में आगे कहा गया है कि कोविड -19 ने एक लैंगिक समानता को एक पीढ़ी पीछे धकेल दिया है और इसमें सुधार की बेहद धीमी रफ्तार इस समस्या को विश्व स्तर पर बदतर बना रही है।

भारत के बारे में, डब्ल्यूईएफ ने कहा कि यहाँ लिंग भेद का स्तर पिछले 16 वर्षों में अपना सातवाँ स्थान दर्ज किया है, लेकिन यह विभिन्न मापदण्डों पर सबसे खराब प्रदर्शन करने वालों देशों में से एक है। अनुमानित अर्जित आय के लिए लिंग समानता स्कोर में सुधार हुआ; जबकि पुरुषों और महिलाओं दोनों के लिए मूल्यों में गिरावट आयी, पुरुषों के मामले में उनमें और अधिक गिरावट आयी।

हालाँकि, राजनीतिक सशक्तिकरण के क्षेत्र में, उप-सूचकांक थोडा बेहतर, 48वें स्थान पर है, उसमें भी पिछले 50 वर्षों से महिलाओं ने राज्य के प्रमुख के रूप में काम करने वाले वर्षों में घटती हिस्सेदारी के कारण गिरावट आयी है।

स्वास्थ्य और उत्तरजीविता उप-सूचकांक पर, भारत सबसे नीचे 146वें स्थान पर है और 5 प्रतिशत से अधिक लिंग अन्तर वाले पाँच देशों-- कतर, पाकिस्तान, अजरबैजान और चीन की श्रेणी में शामिल है।

दक्षिण एशिया में, भारत को समग्र स्कोर के लिहाज से बांग्लादेश, नेपाल, श्रीलंका, मालदीव और भूटान से नीचे, छठा स्थान मिला। केवल ईरान, पाकिस्तान और अफगानिस्तान की स्थिति भारत से भी खराब है।

मौजूदा रफ्तार से, इस इलाके में लैंगिक अन्तर को पाटने में 197 साल लगेंगे। बांग्लादेश और भारत के साथ-साथ नेपाल सहित इन देशों में पेशेवर और तकनीकी क्षेत्र में महिलाओं की हिस्सेदारी बढ़ने से आर्थिक लिंग अन्तर में 1.8 प्रतिशत तक कमी हुई है।

डब्ल्यूईएफ के अनुसार सर्वेक्षण में शामिल 146 अर्थव्यवस्थाओं में से पाँच में से सिर्फ एक ने पिछले एक साल में लिंग अन्तर को कम से कम 1 प्रतिशत तक पाटने में कामयाबी हासिल की है।

डब्ल्यूईएफ की प्रबन्ध निदेशक सादिया जाहिदी ने कहा, “महामारी के दौरान श्रम बाजार में नुकसान के झटके सहने और स्वास्थ्य देखभाल के बुनियादी ढाँचे की निरन्तर अपर्याप्तता के बाद महिलाओं को जीवन यापन खर्च संकट बेहद बुरी तरह प्रभावित कर रही है।”

आगे उन्होंने कहा कि “धीमी गति से सुधार की स्थिति में, सरकार और पूँजीपतियों को दो तरह के प्रयास करने चाहिए-- कार्यबल में महिलाओं की वापसी और भविष्य के उद्योगों में महिलाओं की प्रतिभा के विकास के लिए योजनाबद्ध नीतियाँ। अन्यथा, हम पिछले दशकों के लाभ को स्थायी रूप से क्षरित करने का जोखिम उठायेंगे और भविष्य के विविधतापूर्ण आर्थिक प्रतिफल को गँवा देंगे।”

प्रगति की वर्तमान दरों पर, राजनीतिक सशक्तिकरण के लिंग अन्तर को पाटने में 155 साल लगेंगे, जो 2021 के अनुमान से 11 साल अधिक है तथा आर्थिक भागीदारी और अवसर के मामले में लिंग अन्तर पाटने में 151 वर्ष लगेंगे।

यह रिपोर्ट महिलाओं के प्रति हमारे शासकों की आपराधिक उपेक्षा और हृदयहीनता का आईना है। इन आँकड़ों को सरकारी विज्ञापनों की सुनहरी तस्वीर से ढकने की कुत्सित कोशिशें भी खूब हो रही हैं, जबकि समाज में महिलाओं की दुर्दशा के रूप में हम इनको हर जगह मूर्त रूप में देख रहे हैं।

आजादी के अमृत महोत्सव की चकाचौंध में बीजेपी की असफलताओं को छुपाने की कोशिश

भाजपा ने अपने 2019 के घोषणापत्र में 75 संकल्पों को 15 अगस्त 2022 तक पूरा करने का वादा किया था। 15 अगस्त 2022 इसलिए क्योंकि तब देश आजादी की 75 वीं वर्षगाँठ मना रहा होगा। इसमें किसानों की आय दोगुनी करने, शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने, पर्यावरण को शुद्ध करने, रेलवे को सुदृढ़ करने और गंगा को पूर्णतः साफ करने जैसे 75 संकल्पों को शामिल किया गया था। अब 15 अगस्त यानी लक्ष्य को पूरा करने में चन्द दिन ही शेष है। लेकिन भाजपा के 75 संकल्पों में महज दो-चार को छोड़कर एक भी संकल्प पूरे नहीं हुए हैं। भाजपा की हमेशा से खूबी रही है कि वह अपने दावे जिस जोर-शोर से लांच करती है, उस जोर-शोर से अपनी योजनाओं की समीक्षा नहीं करती है, क्योंकि सरकार समीक्षा तो तब करती है जब योजनाओं पर कुछ काम हुआ हो। खैर आइये आजादी के अमृत महोत्सव तक पूरे होने वाले संकल्पों की समीक्षा की जाये।

किसानों की आमदनी दोगुनी करना

किसानों की आमदनी दोगुनी करने का दावा 75 संकल्पों में पहला संकल्प था। किसानों की आमदनी दोगुनी होने की बात तो दूर, देश के चार राज्यों की आमदनी घट गयी है। इनमें हैं-- झारखंड, मध्यप्रदेश, ओडिशा और नागालेंड। डीएफआई समिति के अनुसार-- झारखंड, नागालैंड, मध्यप्रदेश, ओडिशा की क्रमशः घटी मासिक आय 2173 रुपये, 1551 रुपये, 1400, रुपये और 162 रुपये।

2013 के बाद किसानों की आमदनी का कोई आँकड़ा जारी नहीं किया गया। किसानों की आमदनी की तुलना में लागत मूल्य में लगातार बढ़ोतरी हो रही है। डीजल, खाद, बीज और पेस्टीसाइड की बड़ी कीमतों ने खेती को घाटे का सौदा बना दिया है। सिर्फ जनवरी 2021 से जनवरी 2022 में ही डीजल 15-20 रुपये प्रति लीटर महँगा हुआ तो बीज और पेस्टीसाइड की कीमतों में 20-30 फीसदी की बढ़ोतरी हुई है। अधिकांश किसानों की हालत यह है कि वह खेती से अलग मजदूरी या छोटा-मोटा धंधा न करें तो गुजारा नामुमकिन है। किसानों की जिन्दगी दिन-प्रति-दिन बदतर होती जा रही, किसान कर्ज लेकर चुकाने में असमर्थ है। यहाँ तक कि आत्महत्या करने पर मजबूर है। ऐसे समय आजादी के अमृत महोत्सव की बात करना दिखावा और ढकोसला है।

गंगा को पूर्णतः स्वच्छ बनाना

2015 में गंगा स्वच्छता सरकार की प्राथमिकता में था। 2019 आते-आते सरकार के 75 संकल्पों में गंगा स्वच्छता 73वें स्थान पर पहुँच गयी। 2016 में गंगा सफाई के नाम पर 20 हजार करोड़ रुपये का नमामि गंगे प्रोजेक्ट शुरू हुआ था। उत्तर प्रदेश में 2022 तक सिर्फ 10 फीसदी काम होने पर मामला हाईकोर्ट पहुँच गया। इलाहाबाद हाईकोर्ट ने कहा-- जब यूपी प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड गंगा में हो रहे प्रदूषण की जाँच और कार्रवाई नहीं कर पा रहे तो उसके गठन का कोई औचित्य ही नहीं है। क्यों न प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड को खत्म कर दिया जाये। उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड और पश्चिम बंगाल में जितना सीवेज हर दिन निकलता है, उसका सिर्फ 40 फीसदी ही ट्रीटमेंट होता है। बाकी का सारा कचरा सीधे गंगा में गिरता है। नेशनल ट्रिब्यूनल बोर्ड ने बताया कि आधे से भी अधिक सीवेज सीधे गंगा में गिरते हैं। 97 जगहों पर गंगा का पानी आचमन के लायक भी नहीं है। हजारों करोड़ रुपये गंगा सफाई के नाम पर खर्च होने के बावजूद गंगा 20 फीसदी भी साफ नहीं हुई है।

रेलवे

रेलवे को सुदृढ़ बनाने की बात तो दूर उल्टा रेलवे को निजी हाथों में कौड़ियों के भाव बेचा जा रहा है। नीति आयोग के अनुसार 400 रेलवे स्टेशन, 90 पैसेंजर ट्रेन, 4 पहाड़ पर मौजूद रेलवे, कोकण रेलवे, 15 स्टेडियम, 673 किलोमीटर के डेडीकेटेड फ्रेट कोरिडोर, 265 गुड शेड्स और 1400 किलोमीटर लम्बे ओवरहेड इक्विपमेंट को बेचकर सरकार की मंशा 1.50 लाख करोड रुपये जुटाने की है।

शिक्षा

देश में 1.508 करोड स्कूल हैं। इनमें लगभग 96 लाख अध्यापक हैं। 26.5 करोड़ बच्चे प्रारंभिक स्कूल में है। मोटे तौर अनुमान है कि 10 लाख से अधिक अध्यापकों के पद स्कूलों में खाली हैं। अध्यापकों को लेकर जो चुनौती स्कूलों के सामने है उससे भी जटिल चुनौती उच्च शिक्षा संस्थानों में है। दिल्ली के

शेष पेज 37 पर...

श्रीलंका पर दबाव बनाते पकड़े गये अडानी के "मैनेजर" प्रधानमंत्री जी

हाल ही में श्रीलंका के सीलोन इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड (सीईबी) के अध्यक्ष एमएमसी फर्डिनेण्डो ने एक संसदीय पैनल के सामने मोदी द्वारा उनके राष्ट्रपति पर दबाव बनाने की बात स्वीकारी है। दरअसल, श्रीलंका के उत्तरी मन्नार जिले में एक बड़ी पवन ऊर्जा परियोजना पर काम चल रहा है। इसी परियोजना का ठेका अडानी को दिलवाने के लिए मोदी लम्बे समय से श्रीलंका के तात्कालिक राष्ट्रपति राजपक्षे पर दबाव बना रहे थे। आर्थिक संकट से घिरे श्रीलंका को मदद देने के एवज में यह दबाव बनाया जा रहा था। जब दबाव बढ़ने लगा तो खुद राजपक्षे ने यह बात फर्डिनेण्डो को बतायी और बाद में उन्होंने इसे सार्वजनिक कर दिया। लेकिन फर्डिनेण्डो को इस खुलासे की बड़ी कीमत चुकानी पड़ी। इस खुलासे के एक दिन बाद ही फर्डिनेण्डो को अपना बयान वापस लेकर इस्तीफा तक देने को मजबूर होना पड़ा है।

यह पहली घटना नहीं है जब प्रधानमंत्री मोदी ने अपने पद का फायदा उठाकर विदेशों में अडानी की मदद करनी चाही है। श्रीलंका से पहले यही काम वे बंगलादेश, म्यांमार, आस्ट्रेलिया, ईरान आदि देशों में भी कर चुके हैं। 2014 में सत्ता में आते ही मोदी ने बांग्लादेश में बिजली आपूर्ति का ठेका अडानी को दिलवाया था। इस ठेके के बदले मोदी जी ने शेख हसीना को भारत-बांग्लादेश सीमा से लगते कितने ही गाँव घूस में दे दिये थे। 2014 से पहले बांग्लादेश को बिजली आपूर्ति करने का यह काम सरकारी उद्यम करते थे लेकिन मोदी ने अडानी के मुनाफे के लिए उस करार को तुड़वा दिया। ठेका मिलने के बाद से एक तरफ अडानी ने बिजली के दाम बढ़ाकर बांग्लादेश की गरीब जनता को लूटकर अरबों रुपये कमा लिये, वहीं पूर्व में बांग्लादेश को बिजली आपूर्ति करने वाले भारतीय सरकारी उद्यम को भारी नुकसान पहुँचा है। मोदी जी अडानी को फायदा पहुँचाने के लिए देश की मेहनतकश जनता के खून-पसीने से बने सार्वजनिक उद्यमों को भी बर्बाद करने से पीछे नहीं हट रहे हैं।

देश की जनता के साथ भी ऐसा ही सुलूक किया जा रहा है। पिछले दिनों ऑस्ट्रेलिया की सरकार से साँठ-गाँठ करके मोदी जी ने अडानी को वहाँ कोयले की खदानों का ठेका दिलवाया। अब अडानी की इन खदानों से कोयला खरीदने के लिए मोदी जी राज्य सरकारों पर दबाव बना रहे हैं। तेलांगना के मुख्यमंत्री ने सार्वजनिक तौर पर यह कहा कि मोदी जी का बर्ताव प्रधानमंत्री का न रहकर अडानी के मैनेजर जैसा है, वे उसके फायदे के लिए जबरन हम पर महँगा कोयला खरीदने का दबाव बना रहे हैं। साथ ही झारखण्ड, छत्तीसगढ़ जैसे राज्यों में जहाँ भरपूर मात्रा में कोयला मौजूद है, उन पर भी विदेशी कोयला आयात करने के लिए दबाव बनाया गया है। मोदी जी देश में कोयला संकट का बहाना बनाकर यह काम कर रहे हैं। जबकि कुछ महीनों पहले खुद केन्द्रीय कोयला मंत्री प्रहलाद जोशी ने स्वीकारा था कि देश में कोयले की कोई कमी नहीं है। मोदी जी ने अडानी को देश-विदेश में ऊर्जा, संचार आदि से सम्बन्धित कई ठेके तो दिलवाये, साथ ही बेहद सस्ती दरों पर और सभी मानकों को किनारे करके हजारों करोड़ के सरकारी बैंकों से कर्ज भी दिये जा रहे हैं। 2021 में एक रिपोर्ट में यह खुलासा हुआ था कि अडानी ने अपने सभी कर्जों को चुकाने से मना कर दिया है जिससे उन्हें एनपीए घोषित कर दिया गया है। इसके बावजूद उसे दुबारा कर्ज दिये जा रहे हैं। यह कर्ज का पैसा देश की करोड़ों मेहनतकश जनता की जमा पूँजी है। वह दिन दूर नहीं जब ये बैंक खुद को दिवालिया घोषित कर दें। मोदी के इसी सहयोग से अडानी ने देशवासियों को इतना लूटा है कि वह दुनिया का चौथा सबसे अमीर बन गया है। अपने आपको राष्ट्रवादी बताने वाली भाजपा के लिए मेहनतकश जनता का शोषण-उत्पीड़न करने वाले धनकुबेर ही राष्ट्र है और उनकी सेवा में जनता को झोंक देना ही उनका राष्ट्रवाद है।

भारत में निरंकुश शासन : वी-डैम की रिपोर्ट

हाल ही में स्वीडन की संस्था वी-डेम (वैरायटी ऑफ डेमोक्रेशी) ने अलग-अलग देशों में बढ़ रही निरंकुशता को दिखाने वाली एक रिपोर्ट जारी की। इस रिपोर्ट को 3700 विशेषज्ञों ने 202 देशों के 30 करोड़ तथ्यों के आधार पर तैयार किया है। रिपोर्ट में कहा गया कि पिछले दस सालों में दुनिया में निरंकुशता बढ़ी है। रिपोर्ट में बढ़ रही निरंकुशता के आधार पर दुनियाभर के देशों को सूचीबद्ध किया गया है। इस सूची के अनुसार निरंकुश शासन के मामले में भारत सबसे निरंकुश सरकार वाले शीर्ष छः देशों में शामिल है। इन सभी छः देशों में आधिनायकवादी पार्टियों का शासन चल रहा है। इन पार्टियों के बारे में रिपोर्ट में बताया गया है कि ये निरंकुशता को बढ़ावा दे रही हैं। लोकतान्त्रिक प्रक्रियाओं को खत्म कर रही हैं। ये पार्टियाँ अल्पसंख्यक समुदायों समेत सारी जनता के मानवाधिकारों का हनन कर रही हैं। ये पार्टियाँ जनता से वायदा खिलाफी करती हैं और जनता में अपने बारे में झूठा प्रचार करवाती हैं। अपने विरोधियों को बदनाम करना और राजनीतिक हिंसा को बढ़ावा देना इन पार्टियों का प्रमुख काम बन गया है। भाजपा के बारे में बताया गया है कि यह नकली देश भक्त पार्टी अपने निरंकुश शासन को मजबूत करने के लिए सरकारी तंत्र का इस्तेमाल करती है। भारत में नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व वाली भाजपा सरकार अब चुनाव के जरिये निरंकुशता में बदल गयी है। यह अपने हिन्दु मुस्लिम ऐजेन्डों को कानूनी जामा पहना रही है।

गौ वंश के नाम पर हत्या, भीड़ द्वारा अल्पसंख्यक समुदायों के लोगों की हत्या, देश के अलग-अलग हिस्सों में धार्मिक दंगों को भड़काना, दंगों के दोषियों को सजा न मिलना बल्कि दंगें से पीड़ितों को ही अपराधी घोषित करना सत्ताधारी पार्टी की कार्यशैली का हिस्सा बन गया है। दंगा पीडितों के घरों को तोड़ना भाजपा शासित राज्यों की सरकारों का तयशुदा काम बन चुका है। पूरी राज्य मशीनरी एक पार्टी के हितों को पूरा करने में लगा दी गयी है।

अपनी जन विरोधी नीतियों पर पर्दा डालने के लिए सरकार ने फूटपरस्ती के अल्पसंख्यक विरोधी ऐजेन्डों को तेजी से लागू किया है। सीएए-एनआरसी के नाम पर अल्पसंख्यक समुदाय के लोगों का जबरदस्त उत्पीड़न किया गया है।

कोरोना काल में जब कई करोड़ प्रवासी मजदूर सैकड़ों किलोमीटर के अपने घरों के सफर पर पैदल ही निकलने को मजबूर हुए जिसमें उन्होंने बेपनाह तकलीफों का सामना किया तब सरकार ने अपनी बदइन्तजामी से ध्यान हटाने के लिये अल्पसंख्यकों को महामारी का जिम्मेदार ठहरा दिया। करोड़ों लोगों ने इस बहकावे में आकर अल्पसंख्यक समुदाय के मजदूरों, ठेले खोमचें वालों, रहेड़ी पटरी वालों को पीटना शुरू कर दिया था।

केन्द्र सरकार द्वारा जहाँ अल्पसंख्यक विरोधी एजेण्डों पर जोर दिया जा रहा है, वहीं सरकार की जन विरोधी नीतियों की आलोचना करने वालों को राष्ट्र विरोधी कहकर बदनाम किया जा रहा है। सरकार जन विरोधी नीतियों की आलोचना करने वालों को बदनाम करने तक ही नहीं रुकी, बल्कि उन्हें जेल में भी डाला और अलग-अलग बहाने बनाकर उनका उत्पीड़न किया।

वी-डैम संस्थान द्वारा भारत को 'चुनाव के जरिये तानाशाही' में पिछले वर्ष भी वर्गीकृत किया गया था। जिस पर भारत इस वर्ष भी बना हुआ है। भारत दुनिया के शीर्ष निरंकुश देशों में शामिल है जिसका सीधा मतलब है कि कथित लोकतंत्र की आने वाले समय में और भी बुरी दशा होगी। भारत के लोकतंत्र में भारी गिरावट का मुख्य कारण नरेन्द्र मोदी और भाजपा सरकार के उदय के साथ सत्ता का केन्द्रीकरण है।

रिपोर्ट में चिन्हित किया गया है कि भारत में निरंकुशता अफगानिस्तान की तरह भयावह स्तर पर पहुँच गयी है। रिपोर्ट के अनुसार दुनिया की 70 फीसदी आबादी बढ़ती हुई तानाशाही से प्रभावित हो रही है। रिपोर्ट यह भी बताती है कि तानाशाही अपना स्वरूप बदल रही है। यह पहले की तानाशाही से अलग है। आज तानाशाही की इस बदली हुई प्रकृति को समझने की जरूरत है। इस नयी तानाशाही को समझे बगैर इससे निपटने का रास्ता नहीं खोजा जा सकता।

-- सतेन्द

पलायन मजा या सजा

-- मनीषा

खाली होते गाँव, गाँव वालों के लिए मजा या सजा यह कह पाना अपने आप में एक बहुत ही मुश्किल बात है। ऐसा इसलिए क्योंकि उत्तराखण्ड के घोस्ट विलेजेस का विषय इतना प्रसिद्ध होने लगा है, जितना कि, टिहरी की नथ और कुमाऊ की पिछोडी जैसे गहने। वैसे गाँव से हो रहे पलायन के विषय में आँकड़ों की कोई कमी नहीं है। लेकिन फिर भी मैं उन्हें यहाँ दर्ज नहीं करुँगी क्योंकि आँकड़ों से ना तो सरकार को फर्क पड़ता है, न ही पब्लिक को, ना ही गाँव वालों को और ना ही शहर वालों को। कहने का मतलब है जब तक गाँव का विनाश नहीं रुकेगा, तब तक विकास की बात करना अपने आप में भ्रम पैदा करना है।

वैसे तो पूरे देश के ग्रामीण क्षेत्रों में विकास की सिर्फ बातें ही होती रहीं हैं और धरातल में ऐसी बातें, पुराने घावों पर नमक छिड़क देने जैसा है। खैर मैं यहाँ उत्तराखण्ड के ग्रामीण क्षेत्रों और पहाड़ी क्षेत्रों की बात करना चाहती हूँ। पलायन सबसे बड़ा दीमक है जिसने गाँव की हर चीज को खोखला कर दिया है। या तो चीजें समाप्त होती और कुछ नया पनपता, लेकिन जब सबकुछ ज्यों का त्यों भी दिखाई दे रहा है और उसमें कुछ बचा भी नहीं है, तो ऐसे में क्या कहा जाए। पलायन के कारणों पर नजर डालें तो, आम जन मानस की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने में भी सरकारें फेल रही हैं।

गाँव में पानी को तरसते लोग, और दूर चढ़ाई चढ़ कर पानी की भारी लगाकर पानी लाते लोग, कितने परेशान हैं? ये तो उनकी बुढ़ी हो चुकी उम्मीद से ही अन्दाजा लगाया जा सकता है। गंगा, यमुना, अलकनन्दा, भागीरथी, मन्दाकिनी, नन्दाकिनी, पिण्डर , धौलीगंगा आदि नदियाँ जहाँ से बहकर मैदानी क्षेत्रों में आ रही है वहाँ के लोग पानी की बूंद के लिए त्राहीमाम कर रहे हैं, और मैदानी क्षेत्रों में पानी भर-भर कर बह रहा है। यहाँ हर घर नल तो मिल जायेंगे लेकिन उन नलों में जल की गारण्टी नहीं।

एक से बढ़कर एक पावर प्लांट के लिए हमारे प्रदेश की नदियों के साथ छेड़छाड़ हुई है। मगर मजाल कि उसके बदले में उत्तराखण्ड को बिजली की समस्या का कोई हल मिला हो। वैसे उत्तराखण्ड के कई गाँव में आज तक भी बिजली नहीं है लेकिन इसका जिक्र करने का भी कोई फायदा नहीं, क्योंकि ये भी ज्यादा लोगों का ध्यान नहीं खींच पाते। और एक बार जमकर पहाड़ों में बारिश या बर्फबारी हो जाए तो जिन गाँवों में बिजली है वहाँ भी लोग हफ्ते-हफ्ते बिजली को देखने के लिए तरस जाते हैं।

गाँव में पहले खेतों में किसान बहुत कुछ उगाते थे। खुद भी खाते थे, नाते रिश्तेदारों को समुण (सामान या कोई भी खाद्य सामग्री) भी भिजवाते थे, और बेचते भी थे। लेकिन आज पहाड़ों में बन्दरों की सेना मिल जायेगी, सूअर अब घर के बाड़े तक आने लगे हैं और जमीन के नीचे उगने वाली सब्जियाँ तक उखाड़ कर नाश कर दे रहे हैं। लेकिन इसको ना समस्या समझा जा रहा है और ना ही इसके लिए कोई ठोस कदम उठाए जा रहे हैं। तो अब अपनी मेहनत का भी खा पाना मुश्किल है।

स्वास्थ्य सुविधाएँ इतनी जबरदस्त हैं कि दस्त तक का इलाज ढंग से नहीं हो पाता। जनता के टैक्स के पैसे से प्रोजेक्ट पास होते हैं, बिल्डिंग बनती है, लेकिन पदभार सम्भालने को कोई राजी नहीं। कौन चढ़े पहाड़? तो आमजन झोलाछाप डॉक्टरों को ही अपना जीवन सौंप देते हैं। कम से कम वे छोटी बीमारियों का इलाज तो कर लेते थे। लेकिन अब उन पर भी तलवार लटक रही है। आये दिन डोले में लाते मरीजों की खबर अलग-अलग क्षेत्रों से आती रहती है। गर्भवती महिलाओं को बच्चे कहीं भी जनने पड़ रहे हैं। बरसात में तो एम्बुलेंस बेचारी खुद पीड़ित होती है वो क्या पीड़ित तक पहुँच पाएगी।

ऑलवेदर रोड़ की तारीफ मुझसे ना हो पाएगी, क्योंकि घर से निकलते ही कुछ दूर चलते ही मिल जाता है जाम, टूटी सड़कें, दरकते पहाड़ और कभी जानलेवा बोल्डर, तो क्या बोलें? और वैसे भी सड़कें वहाँ बनी जहाँ कोई निवासी नहीं बचा है। लेकिन जहाँ लोग बसे हैं वहाँ की पगडण्डी भी मरम्मत की गुहार लगाती है। पहाड़ी इतने भोले होते हैं कि उन्हें मेहनत करने से डर नहीं लगता और यही कारण है कि कुछ इन परिस्थितियों में भी डटे हैं।

गाँव में सबसे पहले तो रोजगार ही नहीं हैं। रोजगार की बात करें तो, या तो सब्जी उगाओ, या दुकान खोल लो, या दूध की डेयरी चला लो। और अगर फाइनेंस की समस्या है, तो उसके लिए सरकार की बहुत सारी योजनाएँ मिल जाएँगी। फिर दफ्तरों के चक्कर लगाओ, कागज पत्तर में लगे रहो और फिर जब बैंक में आपकी फाइल पास होकर पहुँचे तो उसके बाद वसूली का जो विकल्प आप बताओगे, अगर बैंक को वह पसन्द नहीं आया, तो हो गया प्लान चौपट। अब बचा क्या! वही “सभ्भी धाणी देहरादून, होणी खांणी देहरादून” (सब कुछ देहरादून में है और रहना खाना भी देहरादून में है) कुछ का दिल्ली, कुछ मुम्बई या और कहीं।

शिक्षा के मंदिर इतने हैं, लेकिन न भक्त हैं ना पुजारी और

शेष पेज 40 पर...

सर्वोच्च न्यायलय द्वारा याचिकाकर्ता को दण्डित करना, अन्यायपूर्ण है; यह राज्य पर सवाल उठाने वालों के लिए भयावह संकेत है

(सामाजिक कार्यकर्ता हिमांशु कुमार ने 2009 में दन्तेवाड़ा में माओवादी ऑपरेशन के नाम पर सुरक्षा बलों द्वारा आदिवासियों के प्रति कथित यातना और न्यायेतर हत्याओं की जाँच की माँग करते हुए सर्वोच्च न्यायलय में एक याचिका दायर की थी। यह घटना सितम्बर और अक्टूबर 2009 की है जब छत्तीसगढ़ के तत्कालीन दन्तेवाड़ा और अब सुकमा जिले के गाँवों में 12 साल की बच्ची सहित 17 आदिवासी मारे गये थे और कई घायल हो गये थे तथा उनके घर तबाह कर दिये गये थे। सर्वोच्च न्यायलय ने उस याचिका को खारिज कर दिया और याचिकाकरता पर 5 लाख रुपये की 'अनुकरणीय' लागत का दण्ड भी लगा दिया। हिमांशु कुमार का कहना है कि वे गुरुवार को सुप्रीम कोर्ट द्वारा उन पर लगाये गये आर्थिक दण्ड का भुगतान नहीं करेंगे, क्योंकि इसका अर्थ होगा कि वे दोषी हैं। इस फैसले पर प्रस्तुत है-- इण्डियन एक्सप्रेस की सम्पादकीय टिप्पणी।)

सुप्रीम कोर्ट ने गुरुवार को उस याचिका को खारिज कर दिया जिसमें 2009 में दन्तेवाड़ा में माओवाद विरोधी अभियानों के दौरान छत्तीसगढ़ पुलिस और केन्द्रीय बलों द्वारा कथित यातना और न्यायेतर हत्याओं की सीबीआई जाँच की माँग की गयी थी। इसके बाद जस्टिस ए एम खानविलकर और जस्टिस जे बी पारदीवाला की पीठ ने जो किया वह परेशान करने वाला मसला है। इसने मुख्य याचिकाकर्ता पर 5 लाख रुपये का जुर्माना लगाया। अदालत ने कहा कि जाँच ने संकेत दिया कि 17 सितम्बर और 1 अक्टूबर, 2009 को अलग-अलग घटनाओं में 17 लोगों की हत्या के लिए माओवादी जिम्मेदार थे, न कि सुरक्षा बल। साथ ही उसने हिमांशु कुमार पर एक 'अनुकरणीय' लागत भी लगायी, जो दन्तेवाड़ा में एक एनजीओ चलाते हैं। अदालत का भारी जुर्माना उन सभी लोगों के लिए एक भयावह संकेत देता है जो भविष्य में राज्य के खिलाफ अदालत का दरवाजा खटखटाने जा सकते हैं, जिनके पास एक दलील के अलावा और चारा नहीं होता। यह याचिकाओं को कहीं से भी, और किसी भी रूप में स्वीकार करने के अदालत के अपने दृष्टिकोण को, जिसमें न्यायाधीश को सम्बोधित कोई पोस्टकार्ड या एक समाचार पत्र की किसी रिपोर्ट को भी याचिका मान लिया जाता था, उसको समाप्त कर देता है और उलट देता है। जनहित याचिका न्यायक्षेत्र में, वास्तव में, याचिकार्ता को अक्सर मामले में गौण मान लिया जाता है, क्योंकि अदालत मामले को अपने हाथ में लेती है, स्थानीय आयुक्तों और अधिकारियों की नियुक्ति करती है, सत्य की खोज में उचित तत्परता सुनिश्चित करती है। याचिकाकर्ता पर कठोर दण्ड मामला दर मामला राज्य के रुख को भी प्रतिध्वनित करता है-- उन सभी लोगों के ऊपर गलत मकसद की चिप्पी लगाता जो सवाल उठाते हैं और जवाब, इन्साफ या समाधान की माँग करते हैं।

दन्तेवाड़ा मामले में याचिकाकर्ता पर जुर्माना लगाना एक नये उभरते न्यायिक ढाँचे का हिस्सा है। इसमें गुजरात 2002 के एक मामले में पिछले महीने सुप्रीम कोर्ट का फैसला भी शामिल है। इधर, शीर्ष अदालत ने तत्कालीन मुख्यमंत्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व वाली गुजरात सरकार को एसआईटी द्वारा क्लीन चिट दिये जाने को बरकरार रखा और राज्य के उच्च पदाधिकारियों द्वारा एक बड़ी साजिश के आरोपों को खारिज कर दिया। लेकिन यह यहीं नहीं रुका-- इसने याचिकाकर्ताओं के लिए सजा की भी माँग की। इसने उन लोगों को कटघरे में खड़ा कर दिया, जो इसकी निगाह में, 'स्पष्ट रूप से गलत मकसद के लिए' 'मामले को गरमाते रहते हैं' और आग्रह किया कि उनके खिलाफ कार्रवाई की जाये। इशारा पाते ही, सामाजिक कार्यकर्ता तीस्ता सीतलवाड़ और गुजरात के पूर्व डीजीपी आर बी श्रीकुमार को अगले ही दिन गिरफ्तार कर लिया गया, जबकि प्राथमिकी में शीर्ष अदालत के फैसले से बड़े पैमाने पर उद्धरण दिया गया। मामले का स्वरूप चाहे जैसा हो, और भले ही वह अदालत में टिकने लायक न भी हो, लेकिन याचिकाकर्ता को घेरना और दंडित करना अन्यायपूर्ण और अनुचित है। बेहद बुनियादी तौर पर, यह लोकतंत्र में नागरिक और एक स्वतंत्र अदालत के बीच बुनियादी समझौते का उल्लंघन करता है-- सर्वोच्च न्यायलय व्यक्तिगत अधिकारों और स्वतंत्रता का संरक्षक है और उसे होना चाहिए, उसे राज्य द्वारा उन अधिकारों के अतिक्रमण के खिलाफ उनकी रक्षा करना चाहिए, लेकिन इसके हालिया दृष्टिकोण से पता चलता है कि यह ऐसे व्यक्तियों को अड़चन के रूप में देखता है और राज्य को ही इस रूप में देखता है जिसे बचाये जाने की जरूरत है।

सुप्रीम कोर्ट को इस चिन्ताजनक विचलन पर विचार करना चाहिए और इससे पहले कि संवैधानिक सुरक्षा और सन्तुलन के रक्षक के रूप में अपनी कड़ी मेहनत से अर्जित प्रतिष्ठा को और अधिक नुकसान पहुँचे, ऐसी कार्रवाई को रोकना चाहिए। हर याचिकाकर्ता जो अपने से अधिक शक्तिशाली लोगों के खिलाफ अदालत का दरवाजा खटखटाता है, उसे यह महसूस करना चाहिए, उसे पता होना चाहिए कि भले ही उसकी याचिका को खारिज कर दिया गया, लेकिन उसे सुना गया, लेकिन दण्डित नहीं किया गया या उस पर अर्थदण्ड नहीं लगाया गया।

एक अकादमिक अवधारणा

(किसी भी औद्योगिक क्रान्ति के विश्लेषण के लिए संरचना तैयार करने वाले विटवाटर्स रैंड यूनिवर्सिटी (जोहानसबर्ग) के प्रोफेसर इयान मोल से अक्षित संगोमला ने बातचीत की। बातचीत के अंश...)

क्या औद्योगिक क्रान्ति में जी रहे लोग इसके बारे में जानते हैं?

औद्योगिक क्रान्ति एक अकादमिक अवधारणा है। अर्नोल्ड टोयनबी ने एक इतिहासकार के रूप में उस अवधि में हुए बदलावों को सही अर्थ देने के लिए इस शब्द का ईजाद (साल 1884) किया था। निश्चित तौर पर उस अवधि की ओर सिंहावलोकन करते हुए लोगों को ये एहसास नहीं हुआ था कि वे एक औद्योगिक क्रान्ति में जी रहे हैं। दूसरी औद्योगिक क्रान्ति भी एक पूर्वव्यापी विचार था। विलियम स्टेनले जेवोन्स स्वचालित निर्माण के लिए कारीगरों और मशीनों की क्रमव्यवस्था के विकास की तरफ देखते हुए ये विचार लेकर आये थे। तीसरी औद्योगिक क्रान्ति का विचार बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आया, जब दुनियाभर की अर्थव्यवस्था में डिजिटल कम्प्यूटर अपनी मौजूदगी दर्ज करा रहा था। मुझे नहीं लगता है कि फिलवक्त मौलिक बदलाव हो रहा है, जिसे देखकर कहा जा सके कि चौथी औद्योगिक (4 आईआर) क्रान्ति हो रही है। इसे ढीली पड़ रही तीसरी औद्योगिक क्रान्ति को पुनर्जीवित करने के लिए वैचारिक धारणा के तौर पर शुरू किया गया है। चौथी औद्योगिक क्रान्ति नहीं हो रही है, लेकिन लोगों से इस पर चर्चा कराई जा रही है। दूसरी औद्योगिक क्रान्तियों में ऐसा नहीं हुआ था।

अगर हम इसे 4 आईआर न भी कहें, तो अचानक से प्रौद्योगिकी में आई तेजी लोगों के काम करने के तरीके में व्यवधान ला रही है। इस पर आपका क्या कहना है?

प्रौद्योगिकी की प्रकृति होती है कि इससे नवाचार के मामलों में तेजी आती है। अलबत्ता मौजूदा नवाचार चक्र नया नहीं है। मशीनी इण्टेलिजेंस और रोबोट्स के बीच सम्बन्ध साल 1980 से पहले न भी हो तो साल 1980 में तैयार हुआ था। मैं ये नहीं कह रहा कि मौजूदा आर्थिक प्रक्रिया में प्रौद्योगिकी विघटनकारी नहीं हो सकती है, लेकिन इन प्रक्रियाओं की जड़ें इतिहास में हैं और काफी पहले ये स्थापित हो चुकी थीं। विचारधारा हमसे कह रही है कि क्रान्ति हमारे हाथों में है और ये पूरी तरह झूठ है। विघटन शब्द को भी कुछ हद तक बहुत तूल दिया गया है। आर्थिक इतिहासकार जोसेफ शुमपीटर ने इस शब्द का ईजाद 20वीं शताब्दी में किया और इस शब्द के पीछे विचार यह था कि अर्थव्यवस्था के बीच ही शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं, जो अर्थव्यवस्था को ही विघटित कर देती हैं। आर्थिक नजरिये से ये महत्वपूर्ण धारणा है, लेकिन जब आप इसे लोगों की जीवनशैली से जोड़ते हैं, तो इस शब्द के साथ समस्या हो जाती है। साल 2016 में जब क्लॉस स्क्वैब ने 4 आईआर के विचार से दुनिया को परिचय कराया था, तो सामाजिक व आर्थिक थियोरिस्ट जेरेमी रिफकिन ने एक लेख प्रकाशित कर इस पूरे विचार को खारिज कर दिया था।

तीसरी औद्योगिक क्रान्ति में सामाजिक-आर्थिक असमानता बढ़ी या घटी?

आँकड़े बताते हैं कि तीसरी औद्योगिक क्रान्ति में सामाजिक आर्थिक असमानता बढ़ी है। पिछले महज 10 वर्षों में देशों के भीतर और देशों के बीच सम्पत्तियों में घोर इजाफा हुआ है और सभी आर्थिक आँकड़ों के मुताबिक आने वाले समय में ये और बढ़ेगा। फिलवक्त दक्षिण अफ्रीका में दुनिया के किसी भी देश के मुकाबले गरीबों और अमीरों के बीच सबसे ज्यादा असमानता है। ये असमानता आने वाले समय में और बढ़ेगी। डिजिटल प्रौद्योगिकी की दुनिया में तकनीकी नवाचारों पर धनाढ्य वर्ग का नियंत्रण है और वे ही इसका फायदा उठा रहे हैं। वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम का तर्क है कि ऑटोमेशन के चलते 4 आईआर में नौकरियाँ जायेंगी, लेकिन सूचना प्रौद्योगिकी से सम्बन्धित नयी नौकरियाँ भी पैदा होंगीं। अगर आप रोजगार के कुछ आँकड़े देखें, तो पाएँगे कि ज्यादा से ज्यादा लोगों को सेवा क्षेत्र में काम करने के लिए मजबूर होना पड़ रहा है और ये सेक्टर असुरक्षित 4 आईआर तकनीकों के आने के साथ भविष्य में इस तरह के काम बढ़ेंगे। अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन के हालिया दस्तावेज में कुछ दिलचस्प बातें हैं। दस्तावेज में कहा गया है कि दुनियाभर के अधिकांश नौकरीपेशा लोग गरीबी रेखा के नीचे जी रहे हैं। जिन लोगों के पास नौकरियाँ हैं, उनमें से अधिकांश लोगों को इस तरह की नौकरियों से फायदा नहीं हो रहा हैं। कथित 4 आईआर में असमानता की खाई बढ़ रही है।

4 आईआर में जिस स्तर पर प्रौद्योगिकियों के एक साथ आने की बात हो रही है, वैसी पूर्व में कभी नहीं सुनी गयी। इस पर क्या सोचते हैं?

फिर एक बार कहूँगा कि औद्योगिक व्यवस्था और आर्थिक व्यवस्था की प्रौद्योगिकियों का एक साथ आना इसकी प्रकृति में है। 4 आईआर से जुड़े लोगों की तरफ से जो कहानी बतायी गयी है वो यह है कि पहली बार प्रौद्योगिकियाँ नाटकीय रूप से एक साथ आ रही हैं, लेकिन पूर्व की औद्योगिक क्रान्तियों में भी ये हुआ था और ये हमेशा होता रहता है भले ही क्रान्ति हो या न हो।

(साभार-- डाउन टू अर्थ)

कम कहना ही बहुत ज्यादा है : एडुआर्डो गैलियानो

-- जोनाह रस्किन

(एडुआर्डो गैलियानो ने बड़ी, मोटी-मोटी किताबें लिखी हैं। लातिन अमरीका के रिसते जख्म(1973), जो वेनेजुएला के ह्यूगो शावेज ने मई में बराक ओबामा को इस उम्मीद से दी थी कि इससे वह कुछ इतिहास सीख पाएँ। यह 300 से ज्यादा पन्नों की है। इसके बाद गैलियानो की मेमोरी ऑफ फायर ट्रायोलॉजी-- जेनेसिस, फेसेस एण्ड मास्क्स, और सेंचुरी ऑफ द विण्ड आयीं जो लगभग 1,000 पन्नों की हैं। हाल ही में, उन्होंने छोटी किताबें लिखी हैं और शब्दों की एक तरह की अदायगी की कोशिश की है। मिरर्स, उनकी सबसे हालिया किताब में, (हन्टर ऑफ स्टोरीज उनकी आखिरी किताब है-- अनु.) जो लगभग हर चीज के बारे में है, सौ से ज्यादा छोटे-छोटे मुद्दे समेटे हैं-- नमक से लेकर नक्शे और पैसे तक और यह लगभग सभी के बारे में है, क्लियोपेट्रा से लेकर अलेक्जेण्डर हैमिल्टन और चे ग्वेरा तक। कोई भी वाकया एक पन्ने से ज्यादा लम्बा नहीं है। हैरानी नहीं कि इस इण्टरव्यू में गैलियानो के जवाब गूढ़, काव्यात्मक, विनोदी और कभी-कभी टेढ़े होते हैं। "मैं शब्दों की गिरती कीमत से लड़ रहा हूँ, जिनकी हालत लातिन अमरीका में पैसे की गिरती कीमत से भी बदतर है," वह कहते हैं। "मैं कम शब्दों में ज्यादा कह सकने की कोशिश करता हूँ-- क्योंकि कम कहना ही बहुत ज्यादा है।"-- जोनाह रस्किन)

जोनाह रस्किन-- आपने लातिन अमरीका को एक ऐसी औरत की तरह दिखाया है जो आपके कान में आकर बात करती है। क्या वह औरत आपकी माँ थी?

एडुआर्डो गैलियानो-- नहीं, जो आवाज मैंने सुनी वह मेरी माँ की नहीं थी, बल्कि किसी चाहने वाली ने जैसे कुछ राज फुसफुसाया हो।

जोनाह रस्किन-- अपनी जिन्दगी में आपने क्या खोया है?

एडुआर्डो गैलियानो-- वैसे, मैं कहूँगा कि मैं अपनी नाकामियाबियों का पुलिन्दा हूँ। जब मैं छोटा था, मैं फुटबाल का सितारा बनना चाहता था, लेकिन मेरे पास थे काठ के पैर। फिर मैंने सन्त बनने की सोची, लेकिन मैं ऐसा कर नहीं पाया क्योंकि गुनाह करने की तरफ मेरा रुझान था। फिर मैंने फनकार बनने की कोशिश की। अब मैं शब्दों से रंगसाजी करता हूँ।

जोनाह रस्किन-- जब आपने पहली बार पढ़ा कि उपन्यासकार सैण्ड्रा सिस्नेरोस ने कहा कि आप एक औरत की तरह लिखते हैं, तो आपको कैसा लगा?

एडुआर्डो गैलियानो-- मैं न हँसा और न ही कुड़कुड़ाया। मैंने इसे एक स्तुति गान (कसीदा) की तरह लिया।

जोनाह रस्किन-- क्या मर्द की तरह लिखना या किसी लातिन अमरीकी की तरह लिखना जैसी कोई चीज सच में है?

एडुआर्डो गैलियानो-- एक बात जरूरी है, ईमानदारी से लिखना। हम एक दूसरे को उन्हीं शब्दों से जानते हैं जो हम बोलते हैं। मैं वही शब्द हूँ जो मैं बोलता हूँ। और अगर मैंने आपको अपने शब्द दे दिये तो मैंने खुद को आपके हवाले कर दिया।

जोनाह रस्किन-- क्या युग सत्य या हमारे वक्त की रूह जैसा कुछ है?

एडुआर्डो गैलियानो-- दुनिया आज गोलाबारी के बीच फँस गये किसी अन्धे की तरह है।

जोनाह रस्किन-- मैं इतिहास को साम्राज्यों की बुलन्दी पर पहुँचने और खाक में मिल जाने की कहानी बतौर देखता हूँ। क्या कोई और नजरिया आप हमें सुझा सकते हैं?

एडुआर्डो गैलियानो-- ऐसा अक्सर होता है कि इतिहास की कुछ बेहतरीन कहानियों का अन्त खुशी-खुशी नहीं होता। बेशक, खुद इतिहास का कभी अन्त नहीं होता। यह हर दिन नये सिरे से शुरू होता है, और जब हम सोचते हैं कि यह हमें अलविदा कह रहा है, तो असल में यह सिर्फ इतना कह रहा होता है कि "फिर मिलते हैं"।

जोनाह रस्किन-- 1968 का साल मेरी पीढ़ी के लिए खास था। क्या आपके लिए भी कोई साल बहुत खास रहा है, या खास साल होना एक अच्छा खयाल (फिक्सन) है जो हम खुद को सुनाते हैं?

एडुआर्डो गैलियानो-- वक्त उनका मजाक उड़ाता है जो इसे नापने की कोशिश करते हैं। लेकिन मुझे ऐसा भी लगता है कि वक्त, हमारी यादों को तारीखों के साथ बाँधने की हमारी जरूरत को समझता है, ताकि यादें हवा में रेत के टीलों की तरह गायब न हो जायें।

जोनाह रस्किन-- फनकार और लेखक मुझे बताते हैं कि "जादुई यथार्थवाद" महज कोई साहित्यिक स्कूल या शैली नहीं है, बल्कि दुनिया में होने का एक पूरा सलीका है। आप इसे कैसे देखते हैं?

एडुआर्डो गैलियानो-- सारा यथार्थ ही जादुई है-- दक्षिण में और उत्तर में, पूर्व और पश्चिम में और पूरे ग्रह में। यथार्थ हमेशा आश्चर्य और रहस्य से भरा होता है, हालाँकि हम अक्सर इसकी तरफ अन्धे और बहरे होते हैं। शायद लिखना इसे इसकी पूर्णता में उकेर पाने में थोड़ी मदद कर सकता है।

जोनाह रस्किन-- साहित्यिक आलोचक, ओरिएण्टलिज्म और कल्चर एण्ड इम्पीरियलिज्म के लेखक एडवर्ड सईद का मानना था कि हमारे युग की परिभाषा-- इतिहास में किसी दूसरे युग से ज्यादा-- निर्वासन, शरणार्थियों और विस्थापित लोगों से बनती है। इसके बारे में क्या खयाल है?

एडुआर्डो गैलियानो-- जिस संस्कृति का दुनिया में दबदबा है वह हमें सिखाती है कि दूसरा इनसान एक खतरा है, कि हमारे साथी इनसान एक खतरा हैं। हम सभी किसी न किसी रूप में निर्वासित बने रहेंगे, जब तक हम इस मिसाल को मानते रहेंगे कि दुनिया एक रेसट्रैक है या जंग का एक मैदान है। मेरा मानना है कि हम कई अलग-अलग तरह के लोगों के हमवतन हो सकते हैं, भले ही वे हमारी अपनी जमीन से दूर, दूसरी जगहों पर, किसी दूसरे वक्त में पैदा हुए हों।

जोनाह रस्किन-- क्या दुनिया का कोई मरकज है? क्या इसकी कोई धुरी है?

एडुआर्डो गैलियानो-- मैंने अपनी किताबें, खासकर मेरी पिछली किताब, मिरर्स, यह दिखाने की कोशिश करने के लिए लिखी है कि कोई भी जगह किसी भी दूसरी जगह से ज्यादा खास नहीं है, और कोई भी इनसान किसी दूसरे इनसान से ज्यादा खास नहीं है। दुनिया को काबू में करने वालों ने हमारी सामूहिक यादों को अपाहिज कर दिया है, वे दिन-ब-दिन हमारे मौजूदा यथार्थ को भी विकृत कर देते हैं। वर्चस्वशाली देशों को सीखना शुरू करना होगा कि "नेतृत्व" की जगह "दोस्ती" शब्द को कैसे अपनाया जाये।

जोनाह रस्किन-- आज इस वक्त पर अगर पीछे मुड़कर चे को देखें, चे की टी-शर्ट, फिल्में और बड़ी-बड़ी जीवनियों के बाद, और साथ ही जब पूरे लातिन अमरीका के लोगों में उनके प्रति श्रद्धा और सम्मान है, अब आप उन्हें कैसे देखते हैं?

एडुआर्डो गैलियानो-- चे चे ही रहेगा। वह एक जिद्दी साथी है और बार-बार पैदा होता रहता है। वह मरने से इनकार कर देता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि वह एक गैर मामूली इनसान था। उसने वही किया जो उसने कहा था कि वह करेगा, और उसने वही कहा जो उसने सोचा था, और यह गैर मामूली बात है। हमारी दुनिया में शब्द और उन पर अमल शायद ही कभी खुद को एक साथ पाते हैं; जब वह ऐसा करते हैं तो शायद ही कभी वह एक दूसरे को पहचानते या सलाम दुआ करते हैं।

जोनाह रस्किन-- बतौर गल्प (फिक्सन) लेखक मार्क्सवाद ने किस तरह आपकी मदद की या आपको रोका है?

एडुआर्डो गैलियानो-- मेरा बचपन कैथोलिक और जवानी मार्क्सवादी रही। शायद मैं उन चन्द लोगों में से हूँ जिन्होंने दास कैपिटल और बाइबल को बहुत बारीकी से पढ़ा है। लोगों ने चाहा कि वे मुझे एंथ्रोपोलॉजी के अजायबघर में रखवा दें। बेशक, दोनों का असर मुझमें अभी भी है, लेकिन मैं उनसे बँधा नहीं हूँ।

जोनाह रस्किन-- कई समकालीन लेखकों ने कहा है कि गैर-गल्प की तुलना में गल्प में सच बता पाना आसान है। क्या आप सहमत हैं?

एडुआर्डो गैलियानो-- मैं निश्चित तौर पर यह नहीं कह सकता। मैं बस इतना कह सकता हूँ पागलपन, सुन्दरता और डरवानी कविताएँ लिखने वाले सभी कवियों पर सच्चाई भारी पड़ती है।

जोनाह रस्किन-- क्या आपने कभी खुद को ऐसी जगह पाया है जहाँ आपने सोचा हो कि "यह एक बहुत ज्यादा विकसित संस्कृति है?" क्या ज्यादा उन्नत और कम उन्नत संस्कृतियाँ हैं?

एडुआर्डो गैलियानो-- सभी संस्कृतियों में खूबियाँ होती हैं, जिन्हें जाना जाना चाहिए। सभी आवाजों में खूबियाँ होती हैं कि उन्हें सुना जाना चाहिए। मैं लिबरेशन थियोलॉजी (मुक्तिकामी धर्मशास्त्र) के अपने जिगरी दोस्तों की उस प्रसिद्ध कहावत को नहीं बताना चाहता जो कहते हैं, "हम उन लोगों की आवाज बनना चाहते हैं जिनके पास आवाज नहीं है।" नहीं, नहीं, बिल्कुल नहीं। हम सबके पास आवाज है। हम सभी के पास दूसरों से कहने के लिए कुछ है जो इस काबिल है कि उसका जश्न मनाया जाये, या कम से कम जिसे माफ किया जा सके। होता बस यह है कि ज्यादातर इनसानियत का गला घोंट दिया जाता है और बात कहने की मनाही कर दी जाती है।

जोनाह रस्किन-- नयी-नयी तकनीक के बारे में आपका

क्या कहना है?

एडुआर्डो गैलियानो-- मशीनों को दोष नहीं दिया जा सकता। हम अपनी मशीनों के गुलाम बन गये हैं। हम अपनी मशीनों की मशीन हैं। इसमें कोई शक नहीं कि संचार के नये उपकरण बहुत काम के हो सकते हैं अगर वे हमारी सेवा में हों-- लेकिन इससे उलट नहीं। कारें हमें चलाती हैं। कम्प्यूटर हमें प्रोग्राम करते हैं। सुपरमार्केट हमें खरीदते हैं।

जोनाह रस्किन-- अखबार की दुनिया में आपने अपनी जिन्दगी का ज्यादातर वक्त गुजारा। एक संस्था के रूप में अखबार की मौत को आप कैसे देखते हैं?

एडुआर्डो गैलियानो-- पत्रकारिता ने मुझ पर गहरी छाप छोड़ी है। मैं पत्रकारिता की पैदाइश हूँ, हालाँकि अब मैं लेखों से ज्यादा किताबें लिखने लगा हूँ। मुझे यह भी मानना चाहिए कि मैं गुटेनबर्ग युग से आया हूँ। स्क्रीन पर कोई लेख या किताब पढ़ना मेरे लिए लगभग नामुमकिन है। मैं कागज पर पढ़ना पसन्द करता हूँ जिसे मैं छूता हूँ और जो मुझे छूता है।

जोनाह रस्किन-- उम्र के साथ क्या आपको यह महसूस हुआ है कि आपने जो कुछ अपनी जवानी में किया उसकी तुलना में इनसानी जिन्दगी में जीव विज्ञान ज्यादा बड़ी भूमिका निभाता है?

एडुआर्डो गैलियानो-- आइंस्टाइन ने कहा है कि नौजवान होना सीखने में कई साल लग जाते हैं। मैं अब यही करने जा रहा हूँ।

(अक्टूबर 01, 2009)

अनुवाद-- पारिजात

'आपरेशन कमल': खतरे में लोकतंत्र

-- सीमा श्रीवास्तव

महाराष्ट्र में महा विकास अघाड़ी गठबन्धन की सरकार गिरा दी गयी। भाजपा शासित राज्यों गुजरात, असम और गोवा में लगभग 10 दिनों तक विधायकों की बाड़ेबन्दी कर, भाजपा ने जो खेल खेला, वह सबने देखा। सरकार बदलने की कवायद तभी से की जा रही थी, जब ढाई साल पहले गठबन्धन सरकार का गठन हुआ था।

2019 में विधानसभा चुनाव के बाद, भाजपा की वादाखिलाफी से खिन्न शिवसेना ने जब नेशनलिस्ट कांग्रेस पार्टी (एनसीपी) और कांग्रेस पार्टी के साथ मिलकर सरकार बनाने का फैसला लिया, तब भी भाजपा ने एनसीपी नेता अजित पवार को अपने खेमे में मिलाकर भाजपा से इतर सरकार बनाने की कोशिशों को जबर्दस्त झटका दिया था। बीजेपी ने अपनी सरकार बना भी ली थी, लेकिन अजित पवार के वापस एनसीपी में चले जाने से बीजेपी की यह तिकड़म असफल हो गयी और अघाड़ी सरकार अस्तित्व में आ गयी। अब असन्तुष्ट नेता एकनाथ शिन्दे को मोहरा बनाकर बीजेपी, उस सरकार को गिराने के अपने मंसूबों में कामयाब हो गयी।

महाराष्ट्र में सरकार गिराने की भाजपा की तरकीबें, उसी पैटर्न का हिस्सा है, जिसके तहत उसने कर्नाटक में जनता की चुनी हुई सरकार को गिराया, मध्यप्रदेश में गठबन्धन सरकार को सत्ता से बेदखल किया और राजस्थान में कांग्रेस सरकार को गिराने की कोशिश की। पुडुचेरी में चुनाव से ठीक पहले विधायकों की खरीद फरोख्त कर कांग्रेस की सरकार गिरायी गयी। झारखण्ड और गोवा में चुनावों में जीत हासिल करने वाली सबसे बड़ी पार्टी कांग्रेस थी, लेकिन सरकार भाजपा की बनी। 2015 में अरुणाचल प्रदेश और 2017 में उत्तराखण्ड में भी कांग्रेस की सरकारों को गिराने की कोशिशें हुईं।

दरअसल, फासीवादी विचारधारा पर आधारित संगठन और पार्टी की कार्य प्रणाली लोकतांत्रिक हो ही नहीं सकती। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) की कोख से निकली भारतीय जनता पार्टी का मूल चरित्र ही गैर लोकतांत्रिक है। अपनी स्थापना के समय अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में बीजेपी नरम हिन्दुत्व का मुखौटा ओढ़े रही। लेकिन जैसे-जैसे भाजपा मजबूत होती चली गयी, उसी के साथ-साथ उसके मुखौटे भी बदलते रहे। अब, जब भारी बहुमत के साथ भाजपा लगातार दूसरी बार केन्द्र की सत्ता पर काबिज है, तो वह अपने असली चरित्र के साथ पूरी तरह सामने आ गयी है। फासीवादी विचारधारा का मूलमंत्र है-- अपने समकक्ष किसी अन्य विचार या संगठन को बर्दाश्त न करना और उसे नेस्तनाबूद करना। इसकी शुरुआत भाजपा ने 2014 के लोकसभा चुनावों से पहले ही कर दी थी। तब प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार नरेन्द्र मोदी ने चुनाव प्रचार में 'कांग्रेस मुक्त भारत' का नारा दिया था। कांग्रेस सरकार की नीतियों और भ्रष्टाचार से आजिज आ चुकी जनता ने बीजेपी को भरपूर वोट दिये और भारी बहुमत के साथ भगवा पार्टी केन्द्र की सत्ता में आ गयी। हालाँकि लोकसभा चुनाव के बाद कांग्रेस को राजस्थान, कर्नाटक,

छत्तीसगढ़, पंजाब, उत्तराखण्ड, गोवा, पुडुचेरी के विधानसभा चुनावों में जीत हासिल हुई। खुद प्रधानमंत्री के गढ़ गुजरात में हुए विधानसभा चुनाव में कांग्रेस का प्रदर्शन बेहतरीन रहा और भाजपा बमुश्किल ही बहुमत हासिल कर सकी।

राज्यों में कांग्रेस की वापसी से भाजपा का 'कांग्रेस मुक्त भारत' का सपना टूटता नजर आया। किसी भी कीमत पर सत्ता हासिल करने के लिए, भाजपा अब हर तरह के अलोकतांत्रिक और अनैतिक हथकण्डे अपना रही है और उसका 'कांग्रेस मुक्त भारत' का नारा 'विपक्ष मुक्त भारत' में बदल गया है। इसकी शुरुआत 2008 में हुई थी, जब पहली बार दक्षिण के राज्य कर्नाटक में भाजपा को चुनाव में सभी पाटियों से अधिक सीटें हासिल हुईं थीं। 224 सीटों वाली इस विधानसभा में भाजपा को 110 सीटें मिलीं, जबकि सरकार बनाने को 112 सीटें होना जरूरी था। बावजूद इसके येदियुरप्पा के नेतृत्व में भाजपा सरकार का गठन किया गया और विधायकों की कमी को खरीद-फरोख्त के जरिये पूरा किया गया। गैर कानूनी खनन से कमाये अकूत धन से बेल्लारी के रेड्डी बन्धुओं ने छह निर्दलीय विधायकों को भारी धन का लालच देकर भाजपा में शामिल कर लिया। इनमें से पाँच को मंत्री पद भी दिये गये। सत्ता हासिल करने के लिए भाजपा के इस अनैतिक गोरखधन्धे को 'ऑपरेशन कमल' का नाम दिया गया और अब इसकी प्रतिध्वनि, कई गुना अधिक भ्रष्टता और अनैतिकता के साथ भाजपा के 'सरकारें गिराओ अभियान' में सुनाई पड़ती है।

कर्नाटक में 2018 में हुए विधानसभा चुनावों में किसी भी पार्टी को बहुमत हासिल नहीं हुआ। बीजेपी को 105, कांग्रेस को 78 और जनता दल (सेक्यूलर) को 37 सीटें हासिल हुई। नतीजतन 115 सीटों के बहुमत के साथ कांग्रेस और जनता दल (एस) की गठबन्धन सरकार बनी। हालाँकि इस गठबन्धन सरकार में अन्दरूनी कलह शुरू हो गयी थी, लेकिन इस दौरान भाजपा का 'आपरेशन कमल' भी जारी रहा। गठबन्धन सरकार के 14 महीने के कार्यकाल के दौरान भाजपा पर सत्ता में वापसी के लिए विधायकों को भारी धन और मंत्री पद का लालच देने के तमाम आरोप लगे। येदियुरप्पा और गठबन्धन सरकार के विधायकों के बीच इस लेन-देन को लेकर हुई बातचीत के ऑडियो रिकॉर्ड भी जारी हुए, जो चैनलों में चले। आखिर बीजेपी, विधायकों के इस 'होलसेल ट्रेड' में कामयाब रही और गठबन्धन सरकार के 17 विधायक, जुलाई 2019 में विधायकी से इस्तीफा देकर भाजपा शासित राज्य की राजधानी मुम्बई भाग गये। इनमें से 14 विधायक कांग्रेस और 3 विधायक जनता दल (एस) के थे।

मुख्यमंत्री एचडी कुमारास्वामी ने असेम्बली में विश्वासमत प्रक्रिया का सामना किया। 19 जुलाई से 23 जुलाई तक चली बहस में कुमारस्वामी 6 वोटों से विश्वासमत हार गये। बहस के दौरान जनता दल (एस) के एक विधायक ने बयान दिया कि उसे पाला बदलने के लिए 30 करोड़ रुपये का ऑफर दिया गया था। एक अन्य विधायक ने आरोप लगाया कि इस्तीफा देने वाले विधायक ए एच विश्वंथ को भाजपा नेताओं ने उसके 28 करोड़ रुपये का कर्ज चुकाने का भरोसा दिलाया था। भाजपा के सत्ता में काबिज होने के बाद इन 17 विधायकों में से 12 विधायकों को वायदे के अनुसार मंत्री पद दिये गये। जाहिर है कि इसमें ब्लैक मनी का जमकर इस्तेमाल किया गया और जानकारों के अनुसार हवाला के जरिये भी विधायकों तक पैसा पहुँचाया गया।

आठ महीने बाद मध्य प्रदेश में भी नाटकीय रूप से कांग्रेस सरकार गिरा दी गयी। यहाँ भाजपा के हथियार थे, कांग्रेस नेता ज्योतिरादित्य सिंधिया। 10 मार्च 2021 को ज्योतिरादित्य सिंधिया ने सोशल मीडिया पर कांग्रेस पार्टी छोड़ने की घोषणा की। सिंधिया के 22 समर्थक विधायकों ने भी यही रुख अपनाया और राज्य की कांग्रेस सरकार अल्पमत में आ गयी। इन विधायकों ने भाजपा शासित राज्य कर्नाटक के बेंगलुरू का रूख किया। इसी बीच जब कांग्रेस अपनी सरकार बचाये रखने का प्रयास कर रही थी, बीजेपी ने सुप्रीम कोर्ट में याचिका दायर कर जल्द फ्लोर टेस्ट कराने की माँग की। सुप्रीम कोर्ट ने 20 मार्च को फ्लोर टेस्ट कराने का आदेश दिया। फ्लोर टेस्ट से एक घण्टा पहले ही मुख्यमंत्री कमलनाथ ने अपना इस्तीफा गवर्नर को सौंप दिया और भाजपा ने बैकडोर से मध्यप्रदेश की सत्ता पर कब्जा कर लिया। याद रहे कि इस समय तक देश में कोरोना दस्तक दे चुका था और दुनिया के कई हिस्सों में यह महामारी फैल चुकी थी।

उत्तराखण्ड में 2016 को यही पैटर्न दोहराया गया। कांग्रेस के 9 विधायकों ने खेमा बदलते हुए भाजपा का दामन थाम लिया। स्पीकर ने इन विधायकों को 'दलबदल कानून' के हिसाब से अयोग्य करार दिया। इसी बीच राज्य में राष्ट्रपति शासन लगा दिया, हालाँकि हाईकोर्ट और सुप्रीम कोर्ट के आदेश के बाद हरीश रावत के नेतृत्व वाली कांग्रेस सरकार ने अपना कार्यकाल पूरा किया। 2015 में अरुणाचल प्रदेश में भी कांग्रेस की चुनी हुई सरकार को सत्ता से बेदखल करने के षड्यंत्र भाजपा ने रचे और तमाम तरह के प्रलोभन देकर कांग्रेस के 21 विधायकों को अपनी ही पार्टी के खिलाफ खड़ा कर दिया। यहाँ भी राष्ट्रपति शासन लगाया गया, हालाँकि सुप्रीम कोर्ट के दखल के बाद कांग्रेस की सत्ता में वापसी हुई। बावजूद इसके भाजपा ने हार नहीं मानी और 16 सितम्बर 2016 को कांग्रेस के 44 विधायकों में से 43 ने पीपुल्स पार्टी ऑफ अरुणाचल (पीपीए) का दामन थाम लिया। पीपीए उसी नॉर्थ ईस्ट डेमोक्रेटिक अलाएंस का हिस्सा है, जिसे भाजपा समर्थन देती है। जनवरी 2017 में आखिर अरुणाचल में भाजपा की सरकार बन गयी, जिसमें 33 विधायक कांग्रेस के थे।

राजस्थान में भी कांग्रेस नेता और उप मुख्यमंत्री सचिन पायलट के असन्तोष को भाजपा ने हवा दी और 12 जुलाई 2020

को सचिन पायलट अपने 18 समर्थक विधायकों के साथ दिल्ली जाकर बैठ गये। उनका कहना था कि उनके साथ 30 विधायक हैं और वह मुख्यमंत्री अशोक गहलोत की सरकार को गिरा सकते हैं। इसके बाद सचिन पायलट हरियाणा चले गये और भाजपा सरकार की मेजबानी में कांग्रेस सरकार को गिराने के षड्यंत्र में शामिल रहे। सचिन पायलट के मन बदल लेने से भाजपा का 'आपरेशन कमल' सफल नहीं रहा। 22 फरवरी 2021 को चुनावों से ठीक पहले पुडुचेरी की कांग्रेस सरकार अल्पमत में आ गयी, क्योंकि इसके पाँच विधायकों ने इस्तीफा दे दिया। पुडुचेरी में कांग्रेस सरकार गिर गयी और यहाँ राष्ट्रपति शासन लगा दिया गया। चुनाव के बाद यहाँ भाजपा की सरकार बनी।

गोवा में भी लोकतांत्रिक परम्पराओं को दरकिनार कर 2017 विधानसभा चुनाव से पहले ही कांग्रेस के 5 और 1 अन्य विधायक भाजपा में शामिल कर लिये गये। चुनाव में 40 सीटों वाली विधानसभा में कांग्रेस ने 17 सीटें जीती, जबकि भाजपा को 13 ही मिलीं। सबसे बड़ी पार्टी होने के बावजूद कांग्रेस को सरकार बनाने का न्यौता नहीं दिया गया और येन केन प्रकारेण बीजेपी ने सरकार बना ली। इसके बाद भी विधायकों की तोड़फोड़ का खेल जारी रहा। इस समय गोवा में कांग्रेस के मात्र 5 विधायक ही पार्टी में बचे हैं। दिल्ली में आप सरकार भारी बहुमत के साथ दो बार सरकार बना चुकी है। भाजपा को फिलहाल यहाँ अपनी सरकार बनने के आसार नजर नहीं आ रहे हैं तो उसने बैकडोर से सत्ता हथियाने की कोशिश की है। मोदी सरकार 'द गवर्नमेण्ट ऑफ नेशनल कैपिटल टेरिटरी ऑफ दिल्ली (एमेण्डमेट) एक्ट लेकर आयी है, जिसका मकसद विधानसभा की विशेष शक्तियाँ लेफ्टिनेण्ट गवर्नर को सौंपना है, ताकि इसके जरिये केन्द्र सरकार दिल्ली की सत्ता पर कब्जा रख सके। भाजपा का 'सरकार गिराओ' अभियान अन्य राज्यों में भी जारी है, जहाँ किसी भी वक्त किसी भी पार्टी की सरकार खतरे में पड़ सकती है। मतलब साफ है कि अब इस देश में चुनावों का शायद ही कोई मतलब बचे। जनता जिसे भी चुने, सरकार अन्ततः भाजपा ही बनाएगी। विधायकों के लालच, उनकी खरीद-फरोख्त, ईडी का दबाव, धमकी और अन्य तमाम तरीकों से भाजपा दूसरी पार्टियों के विधायकों को अपने पाले में करने में महारत हासिल कर चुकी है।

मतलब साफ है कि भारत के लोकतंत्रीय संघीय ढाँचे को जर्जर किया जा रहा है। संघीय ढाँचा, जिसके तहत केन्द्र और विभिन्न राज्यों की सरकारें आती हैं और राज्य सरकारें, केन्द्र से स्वतंत्र होकर अपना शासन चलाती हैं। विभिन्न विचारधाराओं की पार्टियाँ अपने-अपने हिसाब से नीतियाँ बनाती हैं और लागू करती हैं। भाजपा ने संघीय ढाँचे की इस मूल आत्मा को कुचलते हुए गैर भाजपा राज्य सरकारों के कामकाज में अनेक तरीकों से हस्तक्षेप करना शुरु कर दिया है। जहाँ भाजपा सरकार गिराने या बनाने में सफल नहीं हुई (जैसे पश्चिम बंगाल, दिल्ली सहित कई अन्य राज्य) वहाँ भाजपा, गवर्नर के जरिये, ईडी या अन्य सरकारी एजेंसियों के जरिये हस्तक्षेप कर रही है और उनके कामकाज में बाधा डाल रही है। साफ दिख रहा है कि भाजपा का यह खेल आगे भी तमाम तरीकों से वीभत्स रूप लेगा, इससे संघीय ढाँचे के टूटकर बिखर जाने का खतरा पैदा हो गया है।

यह संघीय ढाँचा भारत के लोकतंत्र का मूल आधार है। इस ढाँचे के टूटने का मतलब है कि देश में चुनने के अधिकार को खत्म कर देना यानी विपक्ष को नेस्तनाबूद करना और विरोध की हर तरह की आवाजों को कुचल देना। राज्यों की सरकारी मशीनरी पर कब्जा कर अपने एजेण्डे के हिसाब से शासन चलाना। भाजपा का मूल एजेण्डा है साम्प्रदायिकता फैलाकर हिन्दू राष्ट्र बनाना। इन सभी बातों को हम फलीभूत होते देख रहे हैं। अभी कुछ दिन पहले ही मोदी सरकार ने एक आदेश जारी कर संसद परिसर में, सांसदों द्वारा किसी भी तरह के विरोध और प्रदर्शनों पर रोक लगा दी है। स्पष्ट है कि देश तानाशाही और फासीवाद की ओर तेजी से बढ़ रहा है। देश की संवैधानिक संस्थाएँ भी इसकी गिरफ्त में आ चुकी हैं और लोकतांत्रिक परम्पराओं को विभिन्न तरीकों से चोट पहुँचायी जा रही है। इस बात की आशंका बहुत ज्यादा बढ़ती जा रही है कि चुनाव मात्र एक औपचारिकता बनकर रह जाये और जनता को हासिल, प्रतिनिधि चुनाने का अधिकार एक मजाक बनकर रह जाये।

पेज 50 का शेष ...

बना हुआ है, वहाँ क्या ऐसे वाहियात मुद्दों को उठाने की इजाजत होनी चाहिए, जबकि बहस इस पर हो गयी कि सर्वे में मिला पत्थर का टुकडा शिवलिंग है या फव्वारा।

भारत एक प्रचीन देश है। यहाँ की मिट्टी में कई तरह के समाज और संस्कृतियाँ पनपीं और दफन हुईं। ऐसे देश में कहीं खुदाई करने पर एक या एक से ज्यादा संस्कृतियों से जुड़ी चीजें मिल जाना कोई बड़ी बात नहीं। इस देश में लाखों मन्दिर और मस्जिद हैं। इनके नीचे खुदाई करने में सैकड़ों साल लगेंगे और उससे बेमतलब के विवाद के अलावा कुछ भी हासिल नहीं होगा। अगर आज किसी मस्जिद की जाँच-पड़ताल और खुदाई की इजाजत दी जाती है तो कल कोई मन्दिरों की जाँच-पड़ताल और खुदाई की भी इजाजत मागेंगा। बहुत सम्भव है कि उनके नीचे बौद्ध और जैन धर्म के चिन्ह पाये जायें। क्या न्यायालय को इस तरह के बे-सिर पैर के विवादों पर रोक नहीं लगानी चाहिए?

ज्ञानवापी मस्जिद का गढ़ा गया विवाद

-- मोहित वर्मा

पिछले दिनों अखबार और टीवी चैनलों ने बाकी खबरों को दरकिनार करते हुए महीनों तक ज्ञानवापी मस्जिद के मामले को मुख्य खबर बनाये रखा। हालाँकि इसी दौरान असम और अन्य राज्यों में भयावह बाढ़ से लाखों लोग उजड़ गये और सैकड़ों लोग काल के गाल में समा गये। इसी दौरान महँगाई दर 14 फीसदी तक बढ़ गयी लेकिन ऐसे तमाम मुद्‌दों को ज्ञानवापी के हंगामे में हाशिये पर धकेल दिया गया। यह आज के मुख्यधारा की मीडिया के जन विरोधी चरित्र को भी जाहिर कर देता है।

ज्ञानवापी मस्जिद पर विवाद खड़ा करने की तैयारी बहुत पहले कर ली गयी थी। 1991 में स्थानीय पुजारियों ने मस्जिद में पूजा-अर्चना की माँग की। इन्हें स्थानीय अदालत ने डाँट-फटकार कर भगा दिया था। इसके बाद भी ऐसी कई याचिकाएँ दायर होती रहीं, जिसमें मस्जिद परिसर में हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियाँ होने का दावा किया गया, लेकिन इलाहाबाद हाई कोर्ट ने उन्हें खारिज कर दिया।

इसके बाद वाराणसी के एक वकील शंकर रस्तोगी ने निचली अदालत में मस्जिद के पुरातात्विक सर्वे के लिए याचिका डाली जिसका कारण उन्होंने यह बताया कि मस्जिद का निर्माण अवैध तरीके से हुआ है। यह याचिका बाबरी मस्जिद विवाद पर सुप्रीम कोर्ट के फैसले के ठीक बाद डाली गयी थी।

अप्रैल 2021 में निचली अदालत ने पुरातत्व विभाग को सर्वे के आदेश दे दिये। अप्रैल 2022 में निचली अदालत ने एडवोकेट अजय कुमार मिश्रा को कमीश्नर बनाकर ज्ञानवापी मस्जिद का सर्वे और वीडियोग्राफी कराने का आदेश दे दिया। मई में सर्वे की रिपोर्ट में बताया गया कि मस्जिद परिसर में मन्दिर का मलबा मौजूद है।

मस्जिद कमेटी ने उपासना स्थल अधिनियम 1991 का हवाला देते हुए अदालत से सर्वे पर रोक लगाने का आग्रह किया था लेकिन उसे मंजूर नहीं किया गया।

उपासना स्थल अधिनियम 1991 में कहा गया है कि 15 अगस्त 1947 से पहले का जो धार्मिक स्थल जिस रूप में है या जिस धर्म का है, भविष्य में भी उसी रूप और उसी धर्म का रहेगा।

यह अधिनियम बाबरी मस्जिद विवाद के दौरान बनाया गया था ताकि भविष्य में इस तरह के विवादों को रोका जा सके। 2019 में अयोध्या विवाद पर उच्च न्यायालय का फैसला आने के बाद मथुरा, काशी सहित देशभर में 100 मन्दिरों की जमीनों को लेकर दावेदारी शुरू हो गयी। इतना ही नहीं, इसी के बाद से ताजमहल, कुतुब मीनार और जामा मस्जिद आदि को विवादित बनाने के लिए भी याचिकाएँ दायर की जा चुकी हैं। लेकिन हाल ही में बीजेपी नेता और वकील अश्विनी उपाध्याय द्वारा उपासना अधिनियम को कोर्ट में चुनौती देने के हवाले से कानूनी दाँव-पेंच के जरिये इसमें बदलाव की कोशिशें की गयी हैं।

इस पूरे मामले में भाजपा के नेताओं, विधायकों, सांसदों के इतने गन्दे, जहरीले बयान आये कि उन्हें यहाँ दोहराना भी सम्भव नहीं है। हिन्दुत्ववादी लम्पटों की फौज ने इस मुद्‌दे को लेकर सोशल मीडिया पर साम्प्रदायिक उन्माद फैलाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। हिन्दुत्ववादी संगठनों ने सोशल मीडिया पर एक अभियान चलाया जिसमें गूगल के कमेन्ट बॉक्स में ज्ञानवापी मस्जिद की जगह ज्ञानवापी मन्दिर लिखने को कहा गया। इस अभियान का मुख्य उद्‌देश्य था कि गूगल अपनी सेटिंग में ज्ञानवापी मस्जिद की जगह ज्ञानवापी मन्दिर दर्ज कर ले।

इस बे-सिर पैर के मुद्‌दे को लेकर स्थानीय हिन्दुत्ववादी लम्पटों की फौज ने ऐसा हंगामा खड़ा कर दिया कि भाजपा और आरएसएस के नेताओं को ही उनके खिलाफ बोलना पड़ा, क्योंकि विदेशों में इसे लेकर सरकार और अदालती फैसलों की आलोचना तेज हो गयी थी। इसके बाद अचानक यह मुद्‌दा अखबारों और चैनलों की सुर्खियों से गायब हो गया। मुद्‌दे के गायब हो जाने पर निश्चय ही तमाम इन्साफ पसन्द लोगों ने राहत की साँस ली। सर्वे और वीडियोग्राफी में सामने आये तथ्यों में कुछ भी ऐसा नहीं था जिसके आधार पर ज्ञानवापी में मन्दिर होने का दावा किया जा सके। इससे मन्दिर के दावेदारों का खूब मजाक बना। इसके बावजूद हिन्दुत्ववादी एक बे-सिर पैर की बात को एक जाने-माने विवाद के रूप में स्थापित करने में कामयाब हो गये। बहस इस पर होनी चाहिए थी कि क्या किसी लोकतांत्रिक देश में जहाँ 1947 के पहले की यथास्थिति को बरकरार रखने के बारे में कानून

शेष पेज 49 पर...

पेट्रोलियम और कोयला संकट के पीछे का खेल

--विशाल विवेक

जून के महीने में देश के कई राज्यों से पेट्रोल की कमी की खबरें आयीं। निजी कम्पनियों ने अपने सभी पेट्रोल पम्प पर आपूर्ति बन्द कर दी और सरकारी कम्पनियों ने आपूर्ति घटा दी। ऐसे समय में, जब कम्पनियाँ रूस से सस्ते कच्चे तेल का भरपूर आयात कर रही हों, तो देश में पेट्रोल का संकट अचरज में डालने वाला है।

भारत अपनी जरूरत का 85 फीसदी से अधिक कच्चा तेल आयात करता है। भारत में पेट्रोलियम उद्योग में निजी और सरकारी दोनों कम्पनियाँ शामिल हैं। जब रूस ने भारत को 25 फीसदी छूट पर कच्चा तेल खरीदने का अवसर दिया तो निजी कम्पनियों ने तुरन्त ही यह मौका लपक लिया। 24 फरवरी को रूस के यूक्रेन पर हमले से लेकर मई के आखिरी सप्ताह तक भारत ने रूस से 625 लाख बैरल कच्चा तेल आयात किया था जिसमें आधे से अधिक हिस्सेदारी दो निजी कम्पनियों नयारा एनर्जी और रिलायंस की है। यह मात्रा पिछले साल की इसी अवधि में किये गये आयात से 3 गुना अधिक है।

दरअसल, सरकारी कम्पनियाँ "सालाना अवधि आपूर्ति समझौता" के तहत एक निश्चित मात्रा ही खरीद सकती हैं जबकि निजी कम्पनियों पर ऐसी कोई बाध्यता नहीं होती। इसलिए इस मौके का फायदा भारत की निजी तेल कम्पनियाँ उठा रही हैं। चूँकि रूस पर प्रतिबन्ध लगाते हुए यूरोप ने रूसी तेल खरीदना बन्द कर दिया है इसलिए भारत की निजी कम्पनियाँ रूस के सस्ते कच्चे तेल को रिफाइन करके यूरोप में बेच रही हैं और खूब मुनाफा बटोर रही हैं। इसीलिए उन्होंने घरेलू बाजार में अपनी आपूर्ति बन्द कर दी है जबकि सरकारी कम्पनियों, जैसे इंडियन ऑयल, भारत पेट्रोलियम, हिन्दुस्तान पेट्रोलियम आदि को पहली प्राथमिकता घरेलू बाजार को देनी पड़ रही है।

सरकारी कम्पनियाँ अभी भी अधिकतर कच्चा तेल ओपेक के देशों से बढ़े हुए दाम पर खरीद रही हैं। गौरतलब है कि घरेलू बाजार में तेल के दाम पर सरकारी नियंत्रण रहता है। इसलिए सरकारी कम्पनियों को अपनी ऊँची लागत के चलते प्रति लीटर पेट्रोल पर 17 रुपये और प्रति लीटर डीजल पर 20 रुपये का घाटा उठाना पड़ रहा है। पेट्रोल, डीजल के आसमान छूते दामों से सरकारी कम्पनियों को कोई फायदा नहीं हो रहा है क्योंकि तेल की ऊँची कीमत में से 70 फीसदी से अधिक राशि टैक्स के रूप में सरकार ले लेती है। इसलिए अपने घाटे को कम रखने के लिए सरकारी कम्पनियों ने तेल की आपूर्ति घटा दी है। निजी कम्पनियों द्वारा ऊँचे मुनाफे के लालच में तेल निर्यात कर देने और सरकारी कम्पनियों के अपने घाटे को कम करने की कम्पनियों की मजबूरी के चलते तेल की आपूर्ति घटा देने से जनता पेट्रोल, डीजल के संकट से जूझ रही है।

सरकारी कम्पनियों को तो सरकार घरेलू बाजार में तेल आपूर्ति के लिए मजबूर करती है जबकि निजी कम्पनियों पर ऐसा कोई अंकुश नहीं लगाती। सरकार के इसी दोहरे रवैये के चलते सरकारी तेल कम्पनियाँ भारी घाटा उठा रही हैं। कल को इसी घाटे का बहाना बनाकर सरकार इन कम्पनियों को भी बेच देगी।

कोयले की आपूर्ति का संकट भी ऐसे ही जान-बूझकर खड़ा किया गया है। पिछले दो महीने से सारा देश बिजली कटौती का सामना कर रहा है। इसकी बड़ी वजह बिजली उत्पादन कम्पनियों को पर्याप्त कोयला न मिलना बताया जा रहा है। कहा जा रहा है कि कोयले खरीद का भुगतान नहीं मिलने से कोल इंडिया लिमिटेड ने कोयले की आपूर्ति घटा दी है। ऊपरी तौर पर यह बात सच है लेकिन असल खेल कुछ और है।

भारत सरकार ने वर्ष 2020 में पहली बार निजी क्षेत्र को कोयला खनन करने की मंजूरी दी थी। इस क्षेत्र में उतरने वाली सबसे पहली दो कम्पनियाँ 'अदानी एण्टरप्राइजेज' और 'वेदांता' है। इन कम्पनियों की नजर कोयला खनन के उन इलाकों पर है जो पर्यावरण के लिहाज से संवेदनशील है। अब अगर सरकार अपने चहेतों को मनचाही खदान कौड़ियों के दाम पर देना चाहती है तो उसे एक ऐसा संकट खड़ा करना पड़ेगा जिसका बहाना बनाकर वह यह काम कर सके। मौजूदा संकट से सरकार को यह मौका मिल गया है। हर संकट की तरह इस संकट से भी किस तरह निजी कम्पनियाँ मुनाफा बटोर रही है इसकी एक मिसाल यह है कि मौजूदा बिजली संकट का समाधान करने के लिए सरकार ने निजी बिजली कम्पनियों से बेहद महँगी दर पर बिजली खरीदने का फैसला किया है। इसका भुगतान सरकारी बिजली कम्पनियों के खाते से किया जाएगा जिससे उनका घाटा और अधिक बढ़ेगा। फिर इसी घाटे के नाम पर सरकार बचे हुए बिजली सेक्टर का भी निजीकरण कर देगी और कोयला उत्पादन से लेकर उपभोक्ता तक बिजली वितरण की पूरी शृंखला को पूँजीपतियों के हवाले कर दिया जाएगा। यही वह खेल है जो पर्दे के पीछे जारी है।

जनतांत्रिक समालोचना की जरूरी पहल - कविता का जनपक्ष

-- रामकिशोर मेहता

सुप्रसिद्ध कवि-आलोचक शैलेन्द्र चौहान की एक महत्वपूर्ण आलोचना पुस्तक 'कविता का जनपक्ष' प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक में जनपक्षीय आलोचना और इस परम्परा के कवियों पर गम्भीरता से विवेचन किया गया है। आलोचक बहुत बार रचनात्मक लेखक और पाठक के बीच की बड़ी आवश्यक कड़ी होता है। वह लेखक के मन्तव्यों को खोलता है, पाठकों तक लेकर जाता है। वह लेखन की खूबियों को बहुविध समझाता है और खामियों को इंगित कर लेखक का पथ प्रशस्त करता है। वह 'अन्तर हाथ सहार दे बाहर बाहे चोट' की कला का मालिक है। एक अच्छा आलोचक रचनाकार का मित्र होता है। उसे 'आँगन कुटी छवाय' रखा जाना चाहिए। कई बार आलोचक रचना को वह अर्थ भी देता है जो रचनाकार को स्वयं भी मालूम नहीं होते। लेखक बहुत बार यह कह कर आलोचना से बचने का प्रयत्न करते हैं कि उनका लेखन 'स्वान्तः सुखाय' है। हर लेखन 'स्वान्तः सुखाय' तो होता ही है। प्रश्न हमेशा यह उठा करता है कि वह बहुजन हिताय भी है या नहीं। यह बहुजन हिताय का प्रश्न आज की जटिल परिस्थितियों में बहुत बार रचना के कला पक्ष से टकराता प्रतीत होता है, विशेष कर कविता में। कुछ आलोचक कला पक्ष को प्राथमिकता देते दिखाई पड़ते हैं और कुछ कविता के जन पक्ष को। इसी कारण कविता के आलोचकों में स्पष्ट विभाजन दिखाई पड़ता है। इस बात को लेखक ने अपने प्राक्कथन में बहुत अच्छे से स्पष्ट किया है। जो रचनाकार इन दोनों पक्षों को अच्छे से साधते दिखाई पड़ते हैं विशेष रूप से कविता में वे अच्छे कवि हैं। ऐसे कवि विरले ही होते हैं। लेखक ने जनपक्षधरता की ओर झुकाव लिये कवियों को अपनी इस पुस्तक में आलोचना के लिए चुना है। साथ ही उन आलोचकों के विचार पक्ष को प्राथमिकता से रखा जो कविता में कला पक्ष की तुलना में जनपक्ष को प्राथमिकता देते रहे हैं।

'स्वातंत्रोत्तर हिन्दी आलोचना-- एक अवलोकन' में 'तार सप्तक' और उसमें 'अज्ञेय' की भूमिका, और परिमल ग्रुप की स्थापना और आधुनिकता का बोध, प्रयोगशीलता, नयी भाषा, नयी संवेदना और अनुभूति की बात की। आलोचनाओं की तत्कालीन स्थापनाओं यथा-- शैलीगत, अस्तित्ववादी, समाजशास्त्रीय, रूपवादी और मिथकीय की बात करते हैं। उन आधारों की बात की जिन पर कृति की विवेचना उस काल में की जाती थी। 'आद्य प्रगतिवादी आलोचक किसी कृति के मूल्यांकन के आधारों के बारे में कहते हैं, "आलोचक चाहे जिस दृष्टि से साहित्य का विवेचन करें; इसमें लेखक को व्यक्तिगत रूप से जानना, समझना, उसके जीवनानुभवों को जान लेना, उसके दृष्टिकोण और विश्वबोध को समझना या सामाजिक ऐतिहासिक परिस्थितियों से जोड़ कर उसकी रचना के पात्रों को समझने की कोशिश, उनके मनोविज्ञान, व्यवहार और यथार्थ स्थितियों से उसका तदात्म्य आदि सभी साधन, माध्यम और उनका विश्लेषण अन्ततः मूल्यांकन करने का ही प्रयास तो है। इस पुस्तक का अगला आलेख 'सत्य का क्या रंग : पूछो एक संग' मार्क्सवादी आलोचना के विकास में उठ रहे मत-मतान्तरों और विमर्शों का आलेख है। पिछली सदी के 'पाँचवें दशक का हिन्दी साहित्य और आलोचना' प्रगतिशील और प्रतिक्रियावादियों के बीच संघर्ष का युग था। डॉ रामविलास शर्मा का कहना था कि "ये मूर्तिविधान वहीं सार्थक है जो भावों से अनुप्राणित हो जिसमें सहज इन्द्रियबोध का निखार हो। दूर की कौड़ी लाना काव्य रचना नहीं, बौनों का बौद्धिक व्यायाम है।"

यह छायावाद और तार सप्तकों (और उनकी भूमिकाओं पर लिखे गये अज्ञेय के आलेखों) का समय था। यह उन साहित्यकारों के निर्माण का समय था जिन्हें हम अपनी पाठ्य पुस्तकों में श्रद्धा से पढ़ते आये हैं। इस काल में बड़े-बड़े रचनात्मक साहित्यकारों को आलोचकों के वाण और उनकी अवहेलना/ उपेक्षा झेलनी पड़ी थी। अपनी सुरक्षा के लिए खुद आलोचना के क्षेत्र में उतरना पड़ता था। इनमें राहुल सांकृत्यायन, त्रिलोचन, शील, शैलेन्द्र आदि हैं। साहित्यिक उठापटक का यह खेल सर्वकालिक है। यदि हम भी इसके शिकार हैं तो कोई खास बात नहीं है।

अगला आलेख 'जन-जन के घर आँगन का सूरज भासमान' इसी श्रृंखला की अगली कड़ी मालूम पड़ता है। यहाँ भी तार सप्तक है। अज्ञेय की भूमिका के माध्यम से उसकी राजनीति है। छायावाद है। साहित्यिक उठापटक है। पूर्वपीठिका में देश, धर्म, समाज, अर्थ और युद्ध की राजनीति है। किनारे किये गये साहित्यकारों का संघर्ष है विशेष कर शमशेर का। शमशेर का यह कथन मन को छूता है, "इस दुनिया में दुर्भाग्य की सारी जड़ यही सरलता,

खुलापन, सच्चाई और सच बोलने की वह प्रवृत्ति है जिसे धूर्त, चतुर, चालाक, अवसर परस्त, कैरियरिस्ट और ढोंगी व्यवहारिक जन कतई सहन नहीं कर पाते। वे सच बोलने वालों को फाँसी के तख्ते पर चढ़ा देना चाहते हैं।" अगला आलेख 'भाषा, लोक और काव्य' पर है। इसमें भाषा कि व्युत्पत्ति, विकास और लोक और सत्ता से उसके सम्बन्ध और 'शोक से जन्में श्लोक' से कविता के जन्म की बात है। जन की सहज अनुभूतियाँ सरल भाषा और जटिल अनुभूतियाँ प्रांजल भाषा में होने की बात कही है।

आलोचना की कुछ समझ विकसित होने का सुख अगले कुछ अध्यायों में होता है जब हम अपने से पूर्ववर्ती पीढ़ियों के प्रसिद्धि / स्वीकृति प्राप्त कवियों का मूल्यांकन पढ़ते हैं। इस क्रम में सबसे पहला आलेख है 'निराला की कविता के अन्तर्तत्व'। महाप्राण निराला को हम सब ने खूब पढ़ा, सुना, समझा, पसन्द किया है और लगभग हर आलोचना पद्धति पर मूल्यांकित किया गया है। 'गतानुगतिकता के प्रति तीव्र विद्रोह उनकी कविताओं में आदि से अन्त तक बना रहा। यह ध्यान देने की बात है कि निराला के आरम्भिक प्रयोग छन्द के बन्धन से मुक्ति पाने का प्रयास हैं। छन्द के बन्धनों के प्रति विद्रोह करके उन्होंने उस मध्ययुगीन मनोवृत्ति पर पहला आघात किया था जो छन्द और कविता को प्रायः समानार्थी समझती थी। उसमें भी एक प्रकार की झंकार और एक प्रकार की ताल और लय थी। शमशेर के बारे में इस पुस्तक के आलेख 'शमशेर की कविताई' में जो लिखा उसके एक पैराग्राफ को उद्धृत करना चाहता हूँ जो उनके बारे में मेरे मन की बात कहता है। "शमशेर की कविता में वे सारे गुण और लक्षण हैं जो कि प्रगतिशील कविता में उपलब्ध होते हैं, जैसे लोकमंगल की भावना, जनतांत्रिकता, प्रेम और सौन्दर्य, मानवीय करुणा और संवेदना आदि। किन्तु उसे व्यक्त करने का उनका जो ढंग है, शैली है उसके कारण उनकी कविता सामान्य पाठकों के लिए ही नहीं विशिष्ट पाठकों के लिए भी दुरूह हो जाती है। वास्तव में उनकी कविता के दो छोर हैं। कुछ बोधगम्य सरल कविताएँ और कुछ नितान्त जटिल कविताएँ। जटिल कविताएँ इनकी अवचेतन मन की सृष्टियाँ है। उनकी सहज-सरल कविताओं में एक बहुत ही प्रसिद्ध कविता है 'बात बोलेगी'-- 'बात बोलेगी / हम नहीं/ भेद खोलेगी/ बात ही/सत्य का / क्या रंग/ पूछो, एक संग/ एक जनता का दुःख एक/ हवा में उड़ती पताकाएँ अनेक/ दैन्य दानव। क्रूर स्थिति।/ कंगाल बुद्धि-- मजदूर घर भर / एक जनता का अमर वर-- एकता का स्वर / अन्यथा स्वातंत्र इति।

केदारनाथ अग्रवाल सरल सीधे लगते हैं। उनका कहना है "यदि जिन्दा रहना है तो प्रतिबद्ध होना पड़ेगा। यथास्थिति में परिवर्तन न आया तो अलेंदे और मुक्तिबोध मरते ही रहेंगे। हम लेखकों को प्रतिबद्ध रचनाएँ लिखनी चाहिए खतरे के बावजूद। कबीर, रैदास छोटे तबके के लोग थे, चिन्तक, जागरूक थे। उन्होंने भण्डाफोड़ किया, व्यवस्था का। निराला ने भी यही किया" "हमें कला का उपयोग व्यवस्था बदलने, लोगों की मानसिकता बदलने के लिए करना है। हमारे जवाब का यही रास्ता है। मैं सोचता हूँ कि जब तक जिन्दा हूँ, जब तक मौत न आये तब तक जीऊँ, उसका उपयोग करूँ। मैं अपना विकास पाने के लिए बेचैन हूँ। मुझे जीने का अर्थ वेद में, उपनिषद में कहीं नहीं मिला। मिला तो प्रतिबद्धता में। इससे घबराने की जरूरत नहीं है। पाब्लो नेरूदा, मॉयकोव्सकी, नाजिम हिकमत की तरह जीने की जरूरत है। यही जिन्दगी का राज है और इसी से कविता बनती है।" मेरे लिए यही मूलमंत्र है।

इस पाखण्डी और विकृत समय में जो कहने का है उसे जनकवि बाबा नागार्जुन से बेहतर कोई नहीं कह सकता। बाबा कहते हैं "प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ प्रतिबद्ध हूँ, बहुजन समाज की अनुपल प्रगति के निमित्त, संकुचित 'स्व' की आपाधापी के निषेधार्थ, अविवेकी भीड़ की भेड़िया धसान के खिलाफ, अन्ध-बधिर व्यक्तियों को सही राह पर लाने के लिए, अपने आप को भी 'व्यामोह' से बारम्बार उबारने की खातिर, प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ शतधा प्रतिबद्ध हूँ। बाबा की कविताएँ अपने समय के समग्र परिदृश्य की जीवन्त और प्रामाणिक दस्तावेज है। उदय प्रकाश ने सही संकेत किया है कि बाबा नागार्जुन की कविताएँ प्रख्यात इतिहास चिन्तक डी डी कौशाम्बी की इस स्थापना का कि एक इतिहास लेखन के लिए काव्यात्मक परमाणु को आधार नहीं बनाया जाना चाहिए अपवाद सिद्ध होती हैं। वे कहते हैं कि हम उनकी रचनाओं से अपने देश और समाज के पिछले कई दशकों के इतिहास का पुनर्लेखन कर सकते हैं।

शील जी के आत्म संघर्ष की यह कविता देखें-- राह हारी मैं न हारा / थक गये पथ धूल के / उड़ते हुए रज कण घनेरे/पर न अब तक मिट सके हैं / वायु में पद चिह्न मेरे। जो प्रकृति के जन्म ही से / ले चुके गति का सहारा / राह हारी, मैं न हारा। उस काल के जनमानस का चित्रण करते हुए कहते हैं-- खाते पीते दहशत जीते /घुटते पिटते बीच के लोग / वर्ग धर्म पटकनी लगाता / माहुर पीते बीच के लोग / घर में घर की तंगी-मंगी / भ्रम में लटके बीच के लोग / लोभ-लाभ की माया लादे / झटके खाते बीच के लोग/ घना समस्याओं का जंगल / कीर्तन गाते बीच के लोग / नीचे श्रमिक विलासी ऊपर / बीच में लटके बीच के लोग।

गजानन माधव 'मुक्तिबोध' का जितना विराट और दुरूह रचना संसार कि उसको पढ़ना और समझना किसी आम पाठक के लिए तो नितान्त असम्भव है। और उसके बारे में थोड़े में कुछ

कहना अपने आप को उलझाना है। उसके लिए उनके ही शब्दों में 'ज्ञानात्मक संवेदना और संवेदनात्मक ज्ञान' दोनों की आवश्यकता होती है। उनके बारे में मेरे मन में एक सवाल हमेशा रहा कि इस जनवादी कवि के टार्गेट पाठक /श्रोता कौन हैं? मैंने अपनी वय के हिन्दी के प्रोफेसरों को यह कहते सुना है कि हमें मुक्तिबोध समझ में नहीं आते। उनकी कविता के हर शब्द का अर्थ जानने के बावजूद उनकी कविता समष्टि में क्या कहती समझ में नहीं आता। शायद वे समय से बहुत आगे थे। हम उनके प्रतीकों, बिम्बों को समझ ही नहीं पाते। शायद वे बड़े आलोचकों को बड़ा काम देकर गये हैं। लगभग चालीस साल पहले कवि मित्र सुभाष दसोत्तर ने उनकी एक कविता 'ब्रह्मराक्षस' को समझाया तो कुछ समझ में आया था।

त्रिलोचन एक ऐसे कवि हैं जो अपने निजी अनुभवों को, दुख और सुख को मात्र अपने साथ घट रही घटना या त्रासदी नहीं मानते बल्कि उसे दूसरों के अनुभव, दुख-सुख के साथ जोड़कर संवेदनों और भाव आवेगों का विस्तार करते हैं। ऐसा कवि जो शब्द और जीवन को एक दूसरे का पर्याय मान कर जीवन की अभिव्यक्ति शब्दों में करता है, बहुत शान्त भाव से, न हो-हल्ला, न शोर, न आक्रोश वह कवि है त्रिलोचन। उनकी कविता का एक अंश देखें-- 'कभी कभी लगता है कोई अर्थ नहीं है/ इस जीवन का यदि कुछ है तो मारकाट है/ हत्या और आत्महत्या है लूटपाट है/ बलात्कार है जग में कौन अनर्थ नहीं है/ निराकरण में कोई कहीं समर्थन नहीं है। संघर्ष, श्रम, अन्याय और शोषण के अतिरिक्त त्रिलोचन के रचना संसार में सबसे अधिक महत्वपूर्ण तत्व हैं-- प्रेम, सौन्दर्य, प्रकृति चित्रण और प्रफुल्लता।

कवि रघुवीर सहाय की विशेषता यह है कि वे मध्यवर्गीय अन्तर्विरोधों और आभासी अनुभवों की दुनिया में गहरे पैठकर अपने वस्तुगत निष्कर्ष निकालते हैं और उन्हें बहुत बारीकी से कविता में व्यंजित कर देते हैं। अपने समय के सत्य को आर-पार में पकड़ने का न केवल गम्भीर प्रयत्न करते हैं बल्कि अपनी कविता के माध्यम से समाज को वह सत्य बताना भी चाहते हैं। देश की राजधानी दिल्ली से लेकर प्रान्तों की राजधानियाँ और जिलों की कचहरियों तक की सड़ी हुई अधकचरी व्यवस्था और ढोंगी प्रशासन के विरुद्ध उनमें एक गहरी वितृष्णा मिलती है। मीडिया, भाषा, राजनीति, साहित्य, कला सभी उनके कैनवास पर सहज रूप से आदमी की दैनंदिन विडम्बनाओं के चित्र उकेरने में स्वाभाविक उपकरण की तरह प्रयुक्त होते हैं। सहज भाषा में इतनी सारी व्यंजना पैदा करने में बिरले कवि ही सिद्धहस्त होते हैं।

कुमार विकल को ये एहसास है कि आज की कविताओं में आनन्द की अनुभूति कम होती जा रही है अपनी एक कविता में वे कहते हैं-- 'मैंने चाहा था की मेरी कविताएँ / नन्हें बच्चों की लोरियाँ बन जाएँ/ जिन्हें युवा माँएँ शैतान बच्चों को सुलाने के लिए गुनगुनाएँ/ मैंने चाहा था कि मेरी कविताएँ/ लोकगीतों की पंक्तियों में खो जाएँ/ जिन्हें नदियों में मछुआरे/ खेतों में किसान /मेलों में मजदूर झूमते हुए गाएँ'। आज की मायानगरी को कुमार विकल कुछ इस तरह चित्रित करते हैं 'मैं भटका हूँ इसी कुटिल नगरी के तहखानों में/ जहाँ आदमी के खिलाफ साजिशें होती हैं।' जहाँ साहित्य एक संसाधन है, विचारशून्य बनाने का हथकंडा है, जटिल और कुटिल भोग विलास है और पूरा तंत्र है जो इसके प्रचार प्रसार में सक्रिय हैं।

नाट्यकर्मी शिवराम की कविताओं में आत्मीय सहजता है, गहन संवेदना है, गहरा दायित्व बोध है, स्पष्ट दृष्टिकोण हैं, रोष है, व्यंग्य है, नाटकीयता है, सम्प्रेषणीयता है। निरन्तर जागृत दार्शनिक, राजनीतिक चेतना के बावजूद उनकी कविताएँ दर्शन, राजनीति और विचारधारा के बोझ से दबी हुई नहीं हैं। उनकी कविताओं में विपरीत और जटिल परिस्थितियों से जूझते जीवन की अभिव्यक्ति है। यहाँ मृत सपने नहीं, दृढ़ इरादों का संकल्प है, करुणा की भिक्षा वृत्ति नहीं चुनौती और चेतावनी का साहस है, बड़बोला पन नहीं है, ईमानदार आलोचना है। 'कोई कुछ करता दिखा तो मीनमेख निकाली /लंगडी मार दी/ या उपहास में उड़ा दिया / अपनी श्रेष्ठता का खुद नक्शा बनाया/ अपनी शान में खुद का कसीदे पढ़े/ डरते रहे भीतर तक/ लेकिन अपनी बहादुरी का डंका पीटते रहे। एक दूसरी कविता का अंश-- 'हम अमीरों की हवेलियों को किसानों की पाठशालाएँ नहीं बना पाए/ नहीं खोल पाए हम अंधेरे का ताला /हम नहीं पढ़ पाए वह पाठ जिसे पढ़ते हुए देखना चाहते थे तुम हमें।

इस पुस्तक में लेखक ने पुराने और नये कवियों की कई पीढ़ियों पर लिखा हैं। परन्तु बहुत से छूट भी गये। जो जनवादी कविता लिख रहें हैं या उस क्षेत्र की आलोचना में काम कर रहे है उनके लिए इस पुस्तक में बहुत कुछ है।

पुस्तक-- कविता का जनपक्ष (आलोचना)
लेखक-- शैलेन्द्र चौहान
मूल्य-- रुपये 249/- मात्र
प्रकाशक-- मोनिका प्रकाशन

प्रतिबन्धों का मास्को पर कुछ असर नहीं पड़ा है, जबकि यूरोप 4 सरकारें गँवा चुका हैः ओरबान

हंगरी के प्रधानमंत्री विक्टर ओरबान ने शनिवार 23 जुलाई 2022 को कहा कि सच्चाई यह है कि आर्थिक और राजनीतिक संकटों के चलते यूरोप चार सरकारें गँवा चुका है जबकि रूस पर लगे प्रतिबन्ध मास्को के संकल्पों को कमजोर नहीं कर पाये हैं।

"पश्चिम की रणनीति चारों पहियों में पेंचर वाली किसी कार की तरह है... प्रतिबन्ध मास्को को डिगा नहीं पाये हैं। यूरोप आर्थिक और राजनीतिक संकट में है और चार सरकारें इसकी शिकार हो चुकी हैं-- ब्रिटेन, बुल्गारिया, इटली और एस्तोनिया.. . जनता को कीमतों में तेज बढ़ोतरी झेलनी पड़ेगी। और दुनिया के बड़े हिस्से ने जान-बूझकर हमारी तरफदारी नहीं की। चीन, भारत, ब्राजील दक्षिण अफ्रीका, अरब जगत, अफ्रीका-- हर कोई इस युद्ध से अलग हो गया है, उनकी रुचि अपने खुद के मामलों में है" ओरबान ने ये बातें रोमानिया के शहर वेलतस्नाद में एक भाषण देते हुए कही।

ओरबान यहाँ तक कह गये कि "यूक्रेन का टकराव पश्चिम की प्रधानता का अन्त कर देगा जिससे दुनिया किसी न किसी के खिलाफ एकगुट होगी" और यह भी कि एक "बहुध्रुवीय वैश्विक व्यवस्था दरवाजे पर दस्तक देगी"।

23 जुलाई 2022 मास्को यात्रा पर गये हंगरी के विदेश मंत्री पीटर सिज्जाहुर्तो ने पत्रकारों से कहा, "रूस से गैस आपूर्ति को एक सैद्धान्तिक मसला बना लेने के बजाय यूरोपीय संघ को वास्तविकताओं के प्रति ईमानदार होना चाहिए।"

सिज्जाहुर्तो ने कहा कि "यह साबित हो चुका है कि प्राकृतिक गैस की खरीद कोई सैद्धान्तिक मुद्दा नहीं है बल्कि यह एक भौतिक मुद्दा जिसे बातचीत के जरिये सुलझाया जा सकता है"।

यूक्रेन में मास्को के अभियान के विरोध में यूरोपीय संघ अपने सदस्य देशों से रूस की गैस पर निर्भरता घटाने की गुजारिश कर रहा है।

यूरो अपने निम्मतम स्तर पर है जबकि रूबल पिछले दो साल के उच्च स्तर पर--

व्यापारिक आँकड़े दिखा रहे हैं कि 2022 के बाद पहली बार जुलाई में यूरो की कीमत गिरकर 1.03 डॉलर से भी नीचे चली गयी। यूरो की बिक्री 1.0296 डॉलर पर की गयी जो एक समय 1.0421 डॉलर पर था। डॉलर इन्डेक्स 106.23 अंक के साथ 1. 04 प्रतिशत पर था।

यूरोपीय ऊर्जा संकट के भय यूरो पर दबाव डाल रहे हैं। नार्वे के इक्वीनोर में हड़ताल के चलते उत्पादन रुक जाने से गैस की कीमतें बढ़ गयीं। नार्ड स्ट्रीम में पहले तय मरम्मत कार्य के चलते 11 जुलाई से 21 जुलाई के बीच उत्पादन बन्द रहा। इसके चलते यूरोप के गैस फ्यूचर्स की कीमतें 6 प्रतिशत बढ़कर 1800 डॉलर प्रति हजार क्यूबिक मीटर तक पहुँच गयी।

दूसरी ओर, मई में रूबल की तुलना में यूरो और डॉलर दोनों की विनिमय दर गिरी। डॉलर 2020 के बाद पहली बार गिरकर 69 रूबल पर आ गया और यूरो गिरकर 73 रूबल से भी नीचे आ गया था।

शेयर कारोबार के मामले मास्को स्टॉक एकसचेंज जहाँ रूबल में व्यापार होता है वह 0.02 प्रतिशत गिरकर 2444.67 अंक पर आ गया जबकि डॉलर में व्यापार करने वाला स्टॉक एक्सचेंज 0.087 प्रतिशत बढ़कर 1091 अंक पर आ गया।

मास्को का व्यापार-- पश्चिम के प्रतिबन्ध के बावजूद मास्को को मित्रवत देशों से व्यापार करने से नहीं रोक पाये।

रूसी विदेश मंत्रालय ने अप्रैल में ही स्पष्ट कर दिया था कि उसे उम्मीद है कि चीन के साथ मालों का लेन-देन बढ़ेगा और 2024 तक बीजिंग के साथ व्यापार बढ़कर 200 अरब डॉलर को पार कर जायेगा। इण्टरफैक्स न्यूज एजेन्सी के अनुसार रूस पर पश्चिम द्वारा लगाये प्रतिबन्धों ने उसे अपने आर्थिक सम्बन्ध तथा सहयोग पूर्व की ओर स्थानान्तरित करने पर मजबूर किया है।

मंत्रालय ने दृढ़तापूर्वक कहा है कि निश्चय ही चीनी कम्पनियाँ दूसरे स्तर के प्रतिबन्धों के प्रति सचेत हैं इसके बावजूद बीजिंग हर कीमत पर मास्को के साथ सहयोग के लिए तैयार है।

यही नहीं, पिछले महीने रूसी राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन ने जोर देकर कहा कि मास्को और तेहरान के सम्बन्ध रणनीतिक गहरे किस्म के हैं, उन्होंने इशारा किया कि रूस और ईरान के बीच पिछले साल और इस साल के शुरू के महीनों में व्यापार बढ़ा है।

अपनी ओर से ईरान के राष्ट्रपति अब्राहम रईसी ने चिन्हित किया कि रूसी ईरानी व्यापार सम्बन्ध विकसित हो रहे हैं और जोर देकर कहा कि उनके रास्ते में कोई नहीं आयेगा।

रईसी ने कहा कि दोनों देशों ने जो समझौते किये हैं उन्हें लागू किया जा रहा है। उन्होंने विशेष रूप से बताया कि कैस्पियन सागर क्षेत्र में रूस और ईरान के बीच आपसी सहयोग द्वीपक्षीय सहयोग का एक महत्वपूर्ण पहलू है।

(मंथली रिव्यू से साभार, अनुवाद- प्रवीण)

गैर बराबरी की महामारी

--शालू पंवार

आज की दुनिया में गैर बराबरी एक महामारी का रूप धारण कर चुकी है। दुनिया के किसी भी हिस्से में जीवन का कोई भी पहलू ऐसा नहीं है जिसने इसे संक्रमित ना किया हो। इसका फैलाव इस कदर भयावह हो चुका है कि खुद पूँजीवादी बुद्धिजीवी चिन्तित हैं। हालाँकि वे उन नीतियों से इंच भर भी पीछे हटने के लिए तैयार नहीं है जिन्होंने इस गैर बराबरी को पैदा किया है।

पूरी दुनिया एक ऐसे जालिम तंत्र की गिरफ्त में है जो विशाल मेहनतकश जनता के शरीर से रक्त और मज्जा निचौड़ कर मुठ्ठीभर पूँजीपतियों की तिजौरी में कैद करता जा रहा है। पूरी दुनिया एक ऐसे नर्क में तब्दील हो चुकी है जिसमें स्वर्गोपम अय्याशी से भरे कुछ टापू तैर रहे हैं। अमरीका और यूरोप से लेकर अफ्रीका और एशिया तक स्वर्गिक टापूओं और नंदित नर्क के बीच एक स्पष्ट रिश्ता कायम है। जितने ज्यादा अरबपति उतना भयावह और व्यापक कंगालीकरण। कोरोना महामारी ने इस प्रक्रिया को रॉकेट की रफ्तार प्रदान की है। पूँजीपतियों की संस्था आक्सफेम ने न केवल इसे स्वीकार किया बल्कि गहरी चिन्ता भी जतायी है।

कोरोना महामारी में अरबपतियों की दौलत और कम्पनियों के मुनाफे में रिकॉर्ड वृद्धि हुई है; दूसरी ओर, एक अरब से ज्यादा लोग कंगाली की चपेट में आ गये है इसके बाद शुरू हुए यूक्रेन युद्ध ने खाद्य पदार्थों की कीमतें बढ़ाकर संकट और ज्यादा गहरा कर दिया है।

हम यहाँ पूँजीवादी संस्था 'आक्सफेम' की रिपोर्ट में सामने आये तथ्यों को ही सपाट रूप में रखेंगे, उनका कोई जनपक्षधर विश्लेषण या व्याख्या नहीं करेंगे क्योंकि खुद आक्सफेम ने इस रिपोर्ट को चेतावनी भरे अंदाज में लिखा है रिपोर्ट कहती है कि--

कोरोना महामारी के 24 महीनों में अबरपतियों ने इतनी दौलत कमाई है जितनी उन्होंने पिछले 23 सालों में कमाई थी।

पिछले 10 सालों में केवल भोजन के क्षेत्र में कारोबार करके 62 नये अरबपति पैदा हुए हैं।

हवा और पानी के बाद भोजन और ऊर्जा मानव जीवन की अनिवार्य शर्त है। इन दो क्षेत्रों में अरबपतियों ने रोजाना लगभग 40 अरब रुपये कमाये हैं। भोजन और ऊर्जा की कीमतों में रिकोर्ड बढ़ोतरी हुई है।

कोरोना काल में केवल भोजन के क्षेत्र में अरबपतियों की मुनाफा वसूली से दुनिया में 26 करोड़ से ज्यादा लोग कंगाल हुए हैं। यानी हर रोज 7.27 लाख लोग। इसी दौरान, दूसरे छोर पर हर तीस घण्टे में एक अरबपति पैदा हुआ है। यानी लगभग हर 10 लाख लोगों की कंगाली की कीमत पर एक अरबपति पैदा हुआ है।

आइये एक नजर दुनिया में दौलत के बँटवारे पर डाले आक्सफेम बताता है--

आज दुनिया में 2668 अरबपति हैं। 2020 के बाद, कोरोना काल में दुनिया की जनता तबाही झेल रही थी, उस दौरान 573 नये अरबपति पैदा हुए।

सारे अरबपतियों की कुल दौलत 12,700 अरब डॉलर से ज्यादा है। इसका 42 प्रतिशत लगभग 3780 अरब डॉलर कोरोना काल में कमाये गये हैं। अरबपतियों की दौलत दुनिया के सकल घरेलू उत्पाद के 13.9 प्रतिशत के बराबर है।

दुनिया के सबसे अमीर 10 लोगों की दौलत दुनिया के सबसे गरीब 40 प्रतिशत लोगों के बराबर है।

एलन मस्क दुनिया का सबसे अमीर आदमी है। अगर वह अपनी 99 प्रतिशत दौलत दान कर दे तो भी दुनिया के सबसे अमीर 10 लोगों में शुमार रहेगा। पिछले 2 साल में इसकी दौलत लगभग 7 गुना बढ़ी है।

आय में असमानता

आय में भारी असमानता कोरोना से पहले भी मौजूद थी लेकिन कोरोना काल में यह शिखर पर पहुँच गयी। भोजन और ऊर्जा के क्षेत्र पर सरकारों के बजाय कुछ कम्पनियों के एकाधिकार ने उन्हें संकट के समय मन माफिक मुनाफा कमाने का मौका दिया। इसके चलते कीमतों में तेज बढ़ोतरी हुई जिसने गरीब जनता को तबाह करके असमानता को ऐतिहासिक ऊँचाई पर पहुँचा दिया।

कोरोना महामारी के दौरान दुनिया के 99 प्रतिशत लोगों की आमदनी में गिरावट आयी है। केवल 2021 में ही 12.5 करोड़ स्थायी नौकरी समाप्त हो गयी।

ऊपर के 1 प्रतिशत अमीर लोगों में से कोई व्यक्ति एक साल में औसतन जितनी कमाई करता है उतनी कमाई करने में एक साधारण इनसान को 112 साल लगेंगे।

2021 में नीचे के 40 प्रतिशत लोगों की आमदनी में कोरोना काल से पहले की तुलना में 6.7 प्रतिशत की कमी आयी है।

लैगिक असमानता

कोरोना महामारी से तीव्र हुई आर्थिक असमानता ने लैंगिक असमानता को भी तेजी से बढ़ाया है। महामारी के दौरान तुलनात्मक रूप से महिलाओं ने ज्यादा रोजगार गँवा दिये हैं। करोड़ो रोजगारशुदा महिलाएँ अवैतनिक घरेलू कामों में धकेल दी गयी हैं और अब भोजन और ऊर्जा की कीमतें बढ़ने की मार भी उन्हीं पर सबसे ज्यादा पड़ रही है।

लैंगिक भेदभाव के चलते वेतन में होने वाला फर्क बढ़ गया है। आज की दुनिया की गति के हिसाब से महिलाओं को पुरुषों के बराबर वेतन पाने में अभी 136 साल और लगेंगे। कोरोना से पहले यह समय 100 साल था।

2020 में काम से निकाले जाने वाले लोगों में महिलाओं की संख्या पुरुषों से 1.4 गुना ज्यादा थी और उनके अवैतनिक काम पुरुषों से 3 गुना ज्यादा थे।

2019 की तुलना में 2021 में रोजगारशुदा महिलाओं में 1.3 करोड़ की कमी आयी है।

कोरोना काल में अंसगिठत क्षेत्र में केवल लातिन अमरीका में 4 करोड़ से ज्यादा महिलाओं ने अपने रोजगार गँवा दिये हैं।

नस्लीय असमानता

नस्लीय भेदभाव के शिकार समुदायों के संकट को कोरोना महामारी ने बहुत ज्यादा बढ़ाया है। श्वेत लोगों की सर्वश्रेष्ठता बढ़ी ही है साथ ही काले लोगों, मूलनिवासी समुदायों, आदिवासी समुदायों, दलितों आदि पर हमले पूरी दुनिया में बढ़े हैं।

वैक्सीन की लगभग 11.66 अरब खुराकों पर अमीर देशों ने ही कब्जा जमा लिया, जबकि गरीब देशों में केवल 13 प्रतिशत लोगों को वैक्सीन की पूरी खुराकें मिलीं। अगर वैक्सीन का ईमानदारी से बँटवारा किया जाता तो दुनिया के हर व्यक्ति को वैक्सीन की पूरी खुराकें मिल जातीं।

महामारी में दुनिया के हर 4 मिनट में एक बच्चे ने अपने अभिभावक को गँवाया। इनमें से आधे बच्चे भारत में है जिनकी संख्या 20 लाख है।

राष्ट्रों के बीच असमानता

कोरोना महामारी के बाद निम्न और मध्म आय के देश भारी संकट का सामना कर रहे हैं। जबकि अमीर देश इसका अतिरिक्त लाभ पा रहे हैं। गरीब देशों पर कर्ज का बोझ इतना बढ़ गया है कि उनकी इससे उबरने की सम्भावनाएँ क्षीण होती जा रही हैं। ये देश ऐसी भी स्थिति में नहीं हैं कि बढ़ती कीमतों से अपनी जनता की रक्षा कर सकें। कर्जों की किस्त चुकाने के लिए इन्हें स्वास्थ्य और शिक्षा जैसी जन सुविधाओं में कटौती करनी पड़ रही है।

कोरोना माहामारी के दौरान केवल 2020 में ही 16 में से 14 अफ्रीकी देशों ने 48.7 अरब डॉलर गँवाये हैं। इसकी पूर्ति के लिए इन्हें अपने बजट से सालाना 26.8 अरब डॉलर की कटौती करनी पड़ रही है।

2022 में दुनिया के सारे देशों को कर्जों की किस्त के रूप में 43 अरब डॉलर का भुगतान करना है। जो इन देशों की जनता के भोजन के आधे खर्च और पूर्ण स्वास्थ्य खर्च के योग के बराबर है। 2021 के गरीब देशों का कर्ज इनके स्वास्थ्य, शिक्षा और सामाजिक सुरक्षा पर कुल खर्च से 1.71 गुना ज्यादा था।

कोरोना महामारी के दौरान आईएमएफ द्वारा गरीब और मध्यम आय वाले देशों को दिये गये 87 प्रतिशत कर्ज पूँजीपतियों के समर्थन वाली कठोर शर्तों पर दिये गये हैं, जो गरीबी और असमानता को और ज्यादा बढ़ायेंगी।

60 प्रतिशत गरीब देश कर्ज संकट की कगार पर खड़े हैं।

एक बार फिर यह दोहरा देना जरूरी है कि उपरोक्त सभी तथ्य आक्सफेम संस्था द्वारा चेतावनी भरे अन्दाज में जारी किये गये हैं। गौरतलब है कि आक्सफेम खुद उस साम्राज्यवादी तंत्र की संस्था है जो तंत्र दुनिया में इस कदर भयावह असमानता पैदा करने के लिए जिम्मेदार है। क्या इस तंत्र के समूल नाश के बिना एक समतामूलक दुनिया की कल्पना की जा सकती है।

दुनिया में चौथे नम्बर का अमीर अडानी समूह, देश के बैंकों का सबसे बड़ा कर्जदार भी है।

-- विजय शंकर सिंह

यह भी एक विडंबना है कि अपने साठवें जन्मदिन पर 60,000 करोड़ रुपये दान करने की घोषणा करने वाले गौतम अडानी ने स्टेट बैंक ऑफ इंडिया से 14,000 करोड़ रुपये का ऋण माँगा है। अडानी ग्रुप, गुजरात के मुंद्रा में पीवीसी प्लाण्ट बनाने के लिए, 19,000 करोड़ रुपये का शुरुआती निवेश करेगा, उसी के लिए अडानी समूह ने, सरकारी बैंक एसबीआई, से 14000 करोड़ रुपये का लोन माँगा है। अडानी ग्रुप पर पहले से ही 2.21 लाख करोड़ रुपये का कर्ज है। आम आदमी पार्टी के संजय सिंह ने नरेंद्र मोदी के ऊपर सीधे आरोप लगाते हुए कहा है कि, सरकार और बैंकों ने, 72,000 करोड़ रुपये माफ कर दिया है। इसे तकनीकी या बैंकिंग भाषा में, राइट ऑफ, एनपीए या कर्ज माफी या जो कुछ भी कहें, पर अडानी समूह को 2014 के बाद से उदारता से कर्ज भी मिलता गया है, और बैंक उनका कर्ज राइट ऑफ भी करते गये। सरकार या इसे और स्पष्ट शब्दों में कहें तो प्रधानमन्त्री नरेंद्र मोदी जी की कृपा इस समूह और इस उद्योगपति पर 2014 में सत्ता में आते ही हो गयी थी, जो अब तक अनवरत जारी है। देश की 80 करोड़ जनता जहाँ, 5 किलो राशन पर जीने के लिए अभिशप्त है, और गरीबी में देश, नाइजीरिया से भी नीचे चला गया है, वहीं गौतम अडानी ने बिल गेट्स को भी अपनी धन वृद्धि में मात दे दी। पूँजी के अश्लील एकत्रीकरण का यह एक शर्मनाक दृश्य है। यह सरकार की आर्थिकी की घोर विफलता है।

अडानी समूह अपने मौजूदा व्यवसायिक साम्राज्य को बढ़ाने और नये उद्योगों के विस्तार करने तथा अन्य सम्भावनाओं को खोजने के लिए, ऋण लेकर वित्तपोषण की नीति का उपयोग जारी रखे हुए है। कैपिटलाइजेशन यानी पूँजीकरण यानी वित्तपोषण के आँकड़ों के अनुसार, अडानी समूह की कम्पनियों का संयुक्त सकल कर्ज इस साल, मार्च 2022, के अंत में 2.22 लाख करोड़ रुपये, के उच्च स्तर पर पहुँच गया, जो एक साल पहले 1.57 लाख करोड़ रुपये था। यानी, एक साल में अडानी समूह का संयुक्त सकल कर्ज, 42 प्रतिशत अधिक बढ़ गया। यानी अडानी समूह ने उदारता से कर्ज लिया भी और बैंको ने भी उस समूह को कर्ज देने में उत्साह से उदारता दिखायी भी। परिणामस्वरूप, अडानी समूह का सकल ऋण इक्विटी अनुपात मार्च 2022 के अन्त में, बढ़कर, 2.36 तक पहुँच गया जो पिछले चार साल के सबसे ऊँचे स्तर पर है। यही ऋण इक्विटी अनुपात, जो एक साल पहले 2.02 और वित्त वर्ष 2019 के अन्त में 1.98 के स्तर पर था। 2017 में पब्लिक सेक्टर बैंकों यानी सरकारी बैंकों ने, समूह की मदद भी खूब की और यह मदद, 72,000 करोड़ रुपये के बट्टे खाते में डालने के रूप में की गयी, जिसका उल्लेख संजय सिंह ने किया है।

जितनी उदारता से अडानी समूह को सरकारी बैंकों ने कर्ज दिया उतनी ही उदारता से, इन्हीं बैंकों ने उस कर्ज को राइट ऑफ भी किया जो, बैंकिंग शब्दावली में कर्ज माफी तो नहीं है, पर वह कर्ज माफी की ही तरह राहतनुमा भी है। ऐसे राइट ऑफ या एनपीए किये गये कर्ज, शायद ही कभी वसूले जाते हों या कभी वसूले गये हों। हो सकता है आप को कुछ आँकड़े इनके वसूली के मिल भी जाये, पर जब राइट ऑफ/एनपीए की गयी राशि और राइट ऑफ/एनपीए के बाद उनकी वसूली की राशि का अनुपात देखिएगा तो, पाइएगा कि, जितना कर्ज राइट ऑफ/एनपीए किया गया है, उसकी तुलना में वसूली बहुत कम है। और ऐसे आँकड़े बैंकों की वेबसाइट पर मिलते भी नहीं है। यदि कोई आरटीआई लगाकर पूछे तो, शायद ही पूरी तरह से संतोषदायक उत्तर मिले। अडानी समूह को दिये गये कर्जों के विवरण के बारे में तो यह भी निर्देश है कि इसे सार्वजनिक नहीं किया जा सकता है। ऐसा क्यों है, यह भी वित्त मंत्रालय और बैंकिंग सेक्टर ही बता पायेगा। यहीं यह भी आप को याद दिलाना समीचीन होगा कि, सुप्रीम कोर्ट द्वारा बार-बार यह कहने के बाद कि ऋण डिफॉल्टर्स की सूची सार्वजनिक की जाये, सरकार ने कोई न कोई बहाना बना कर ऐसा करने से कन्नी काट ली। ऐसा क्यों किया गया यह सरकार ही बेहतर जानती होगी।

ऋण इक्विटी अनुपात, यानी कम इज डेट-टू-इक्विटी रेशियो (डी/ई) का उपयोग, किसी कम्पनी के वित्तीय लाभ के मूल्यांकन

के लिए किया जाता है, और इसकी गणना इसके शेयरधारक, इक्विटी द्वारा कम्पनी की कुल देनदारियों में भाग देने के द्वारा की जाती है। (डी/ई) रेशियो कारपोरेट फाइनेंस में प्रयुक्त एक महत्वपूर्ण पैमाना है। यह एक संकेत है, जिस पर कम्पनी ऋण बनाम पूर्ण स्वामित्व वाले फंडों के जरिए अपने कारोबार का वितपोषण/पूंजीकरण कर रही है। विशिष्ट तरीके से कहा जाए तो यह व्यवसाय के मंदी की स्थिति में सभी बकाया ऋणों को कवर करने के लिए शेयरधारक की क्षमता को प्रदर्शित करती है। दरअसल, डेट-टू-इक्विटी रेशियो एक विशिष्ट प्रकार का गियरिंग रेशियो अर्थात पूँजी जुटाने का अनुपात है।

उच्चतर लाभ अनुपात से शेयरधारकों के लिए अधिक जोखिम वाले कम्पनी या स्टॉक का संकेत मिलता है। बहरहाल, डी/ई रेशियो से पूरे उद्योग समूहों की तुलना करना कठिन है जहाँ ऋण की आदर्श मात्रा अलग-अलग होगी। डी/ई रेशियो किसी कम्पनी की नेट एसेट वैल्यू की तुलना में उसके ऋण की माप करता है, जिसका अधिकतर उपयोग, उस सीमा का अनुमान लगाने के लिए किया जाता है, जिसमें कम्पनी अपने एसेट का लाभ उठाने के एक माध्यम के रूप में ऋण ले रही है। उच्च डी/ई रेशियो का सम्बन्ध अक्सर उच्च जोखिम के साथ जोड़ा जाता है, जिसका अर्थ यह हुआ कि कम्पनी अपने ग्रोथ का वित्तपोषण ऋण के जरिये कर रही है। अगर ग्रोथ के वित्तपोषण के लिए बहुत अधिक ऋण लिया जाता है तो इसका अर्थ यह हुआ कि कम्पनी सम्भवतः और अधिक आय अर्जित कर सकती थी जो कि उस वित्तपोषण के बगैर होती।

ऐसा नहीं है कि केवल अडानी समूह ही कर्ज लेकर अपने व्यापार का विस्तार करता है बल्कि यह दुनिया भर के कारपोरेट के पूँजीकरण यानी कैपिटलाइजेशन की एक स्थापित प्रक्रिया है। यह कर्ज या तो बैंक देते हैं या वित्तीय संस्थान या इक्विटी से कम्पनियाँ पैसे उठाती हैं। विभिन्न समूह कम्पनियों के पास उपलब्ध नकदी और बैंक बैलेंस के लिए समायोजित, समूह का शुद्ध ऋण-से-इक्विटी अनुपात वित्त वर्ष 2021-22 के अन्त में बढ़कर 2.07 हो गया, जो वित्त वर्ष 2017-18 के बाद से सबसे अधिक है। मार्च 2022 के अन्त तक अडानी समूह की कम्पनियाँ 26,989 करोड़ रुपये की नकदी और बैंक बैलेंस पर बैठी थीं। इसके विपरीत, सूचीबद्ध टाटा समूह की कम्पनियों ने इस साल मार्च 2022, के अन्त में 3.35 लाख करोड़ रुपये के संयुक्त सकल ऋण की सूचना दी, जो साल-दर-साल 1.3 प्रतिशत कम है। समूह का सकल ऋण-से-इक्विटी अनुपात वित्त वर्ष 22 में एक साल पहले 1.2 से घटकर 1.01 हो गया।

यह विश्लेषण अडानी समूह की सात सूचीबद्ध कम्पनियों-- अडानी इंटरप्राइजेज, अडानी पोर्ट्स एण्ड एसईजेड, अडानी पावर, अडानी ट्रांसमिशन, अडानी ग्रीन, अडानी टोटल गैस और अडानी विल्मर के संयुक्त वित्त पर आधारित है। अडानी पोर्ट्स को वित्त वर्ष 22 और वित्त वर्ष 22 की चौथी तिमाही के वित्तीय परिणाम घोषित करना बाकी है। समेकित आधार पर रिलायंस इण्डस्ट्रीज का सकल ऋण वित्त अनुपात, वर्ष 2012 में 4.2 से मार्च के अन्त में 2.82 ट्रिलियन (2820 अरब) रुपये हो गया।

मीडिया रिपोर्ट्स के अनुसार, अडानी ग्रुप का कर्ज वित्तीय वर्ष 2021-22 में 40.5 प्रतिशत से बढ़कर, 2.21 लाख करोड़ रुपये पहुँच गया। पिछले वित्तीय वर्ष 2020-21 में यह 1.57 लाख करोड़ रुपये था। वित्तीय वर्ष, 2021-22 में अडानी इंटरप्राइजेज के कर्ज में सबसे अधिक, 155 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इस दौरान कम्पनी का कर्ज बढ़कर 41,024 करोड़ रुपये पहुँच गया। हालाँकि अडानी पावर और अडानी विल्मर के कर्ज में कमी आयी है। अडानी पावर की उधारी 2021-22 में 6.9 फीसदी घटकर 48,796 करोड़ रुपये रह गयी। इसी तरह अडानी विल्मर का कर्ज 12.9 फीसदी घटकर 2568 करोड़ रुपये रह गया।

अब एक नजर बैंकिंग सेक्टर पर डालते हैं। रिजर्व बैंक आरबीआई, के आँकड़े बताते हैं कि सरकारी बैंकों ने, साल 2010 से कुल 6.67 लाख करोड़ रुपये के कर्जों को राइट ऑफ किया है। यह कुल कर्जों के राइट ऑफ का लगभग, 76 प्रतिशत है। निजी बैंकों का राइट ऑफ, कुल राइट ऑफ का 21 प्रतिशत है। विदेशी बैंकों ने इसी दौरान 22 हजार 790 करोड़ रुपये के कर्ज को राइट ऑफ किया है। यह कुल राइट ऑफ का 3 प्रतिशत हिस्सा है। वित्त वर्ष 2019-20 में इन बैंकों ने कुल 2.37 लाख करोड़ रुपये के कर्ज को राइट ऑफ किया है। यह पिछले 10 सालों के राइट ऑफ का एक चौथाई हिस्सा है। इसमें से 1.78 लाख करोड़ रुपये सरकारी बैंकों का है जबकि 53 हजार 949 करोड़ रुपये निजी बैंकों का है।

सबसे ज्यादा राइट ऑफ देश के सबसे बड़े बैंक भारतीय स्टेट बैंक ने किया है। इसने वित्त वर्ष 2020 में 52 हजार 362 करोड़ रुपये के कर्ज को राइट ऑफ किया है। इसके बाद इंडियन ओवरसीज बैंक ने 16 हजार 406 करोड़ रुपये, बैंक ऑफ बड़ौदा ने 15 हजार 886 करोड़ और यूको बैंक ने 12 हजार 479 करोड़ रुपये के कर्ज को राइट ऑफ किया है।

निजी बैंकों में सबसे ज्यादा कर्ज का राइट ऑफ आईसीआईसीआई बैंक ने किया है। इसने 10 हजार 942 करोड़ रुपये का कर्ज राइट ऑफ किया है। एक्सिस बैंक ने 10 हजार 169 और एचडीएफसी बैंक ने 8 हजार 254 करोड़ रुपये के कर्ज को राइट ऑफ किया है। कर्ज को राइट ऑफ किये जाने से बैंकिंग सिस्टम में एक तनाव भी बनता है, क्योंकि यह पैसे वापस नहीं आते हैं और फिर इसके लिए बैंकों को दूसरा रास्ता अपनाना होता है।

रिजर्व बैंक की रिपोर्ट के मुताबिक, बैंकों का कुल बुरा फँसा कर्ज (ग्रॉस एनपीए) मार्च 2019 में 9.1 प्रतिशत था जो मार्च

2020 में 8.2 प्रतिशत रहा है। इसमें से ज्यादातर योगदान इसी तरह के राइट ऑफ का रहा है। बैंकों के एनपीए में ज्यादा हिस्सा 5 करोड़ रुपये से ज्यादा वाले लोन हैं। कुल एनपीए में इनका हिस्सा करीबन 80 प्रतिशत है। एक और महत्वपूर्ण तथ्य जो आरटीआई से सामने आया है कि, केंद्र की एनडीए सरकार ने पिछले 7 सालों में करीब 11 लाख करोड़ रुपये के लोन माफ किये हैं, जो यूपीए सरकार के तुलना में 5 गुना ज्यादा है। इसका खुलासा आरटीआई में हुआ है और इससे कहीं ना कहीं बैंकों के कमजोर हो रहे हालात के बारे में समझा जा सकता है।

बैंकिंग सेक्टर की बदहाली पर रिजर्व बैंक के पूर्व गवर्नर डॉ रघुराम राजन और पूर्व डिप्टी गवर्नर विरल आचार्य ने, भारतीय बैंकिंग सेक्टर के हालात पर एक रिसर्च पेपर लिखा है। जिसमें, देश के बैंकिंग सेक्टर की समस्याओं और समाधान पर चर्चा करते हुए कई ऐसे रास्ते सुझाये हैं, जिससे इस सेक्टर को मजबूत किया जा सके। उन्होंने सरकारी बैंकों पर विशेष रूप से अपना ध्यान, केंद्रित किया है। रघुराम राजन ने इस रिसर्च पेपर के बारे में अपने लिंक्डइन अकाउंट के जरिये जानकारी भी दी थी।

इस पेपर में दोनों अर्थशास्त्रियों ने सबसे पहले यह जानने की कोशिश की है कि बीते कुछ दशक के दौरान भारत में बैंकिंग सेक्टर क्यों चुनौतियों के दौर से गुजर रहा है, जिसमें खासतौर पर सरकारी बैंकिंग सेक्टर। दरअसल, प्राइवेट सेक्टर बैंकों की तुलना में पब्लिक सेक्टर बैंकों में बैड लोन की समस्या ज्यादा है। इनमें से अधिकतर धनराशि की वसूली नहीं हो पाती है। उन्होंने इस सेक्टर में संस्थागत जटिलताओं के बारे में भी जिक्र किया है। भारत में फँसे कर्ज के रिजॉल्युशन में यह भी एक समस्या है। उन्होंने यह भी बताया है कि कई दशकों से भारत में फँसे कर्ज की समस्या को कैसे सुलझाया जा सकता है।

इसमें उन्होंने खराब लोन से डील करने, पब्लिक सेक्टर बैंकों को बेहतर बनाने, पब्लिक सेक्टर बैंकों के वैकल्पिक स्वामित्व के बारे में, बैंकों के जोखिम प्रबंधन को बेहतर करने के बारे में और बैंकिंग स्ट्रक्चर में बेहतर वेराइटी के बारे में विशेष तौर से फोकस किया है। इस रिसर्च पेपर में उन्होंने यह भी कहा है कि, इनमें से कई बातों पर पहले भी सुझाव दिये गये हैं। साल 2014 में पीजे नायक कमेटी का भी जिक्र है। केंद्र सरकार ने 'ज्ञान संगम' के तौर पर 2015 में इस कमेटी की सिफारिशों को लागू करने की कोशिश की थी। यह सिफारिशें सरकारी बैंकों में नियुक्तियों और बैंकों के बोर्ड को सशक्त बनाने के लिए बैंक बोर्ड ब्यूरो बनाने से सम्बन्धित थीं। खुद प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने भी इस पर सहमति जतायी थी। लेकिन, करीब 5 साल बाद भी स्थिति में कोई सुधार नहीं है। राजन रिपोर्ट को आये भी लगभग तीन साल हो रहे हैं पर, अभी भी बैंकों की कार्यप्रणाली को लेकर कोई ठोस कदम नहीं उठाये गये हैं, जिसका असर बैंकिंग सेक्टर पर जिस प्रकार से पड़ रहा है वह सामने दिख भी रहा है।

(विजय शंकर सिंह भारतीय पुलिस सेवा के वरिष्ठ अधिकारी हैं।)

(मीडिया विजिल, 23 जुलाई 2022 से साभार)

फसल बीमा से जुड़ी कम्पनियों को 5 साल में 40 हजार करोड़ रुपये का मुनाफा

हाल ही में राज्य सभा में कृषि मंत्री नरेन्द्र तोमर ने फसल बीमा योजना के सम्बन्ध में जानकारी साझा की। उनके अनुसार प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना से जुड़ी कम्पनियों द्वारा पिछले 5 वर्षों में भुगतान के रूप में किसानों के 1,19,314 करोड़ रुपये के दावों को पूरा किया गया। जबकि इन 5 वर्षों के दौरान किसानों नें बीमा कम्पनियों को बीमा किश्त के रूप में 1,59,139 करोड़ रुपयों का भुगतान किया। कृषि मंत्री ने राज्य सभा में बताया कि किसानों को बीमा दावों का भुगतान 4,190 रुपये प्रति हेक्टेयर की दर से किया गया। कृषि मंत्री द्वारा पेश किये गये आँकड़ों से साफ पता चलता है कि फसल बीमा से जुड़ी कम्पनियों ने पिछले 5 वर्षों में 40,000 करोड़ रुपये का मुनाफा हासिल किया। केन्द्र की सत्ता सम्भालते ही सरकार ने 5 वर्षों में किसानों की आय दुगनी करने के दावों का ढोल पीटना शुरू कर दिया था। इसके तहत बड़े जोर-शोर के साथ प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना को 2016 में लागू किया गया। इस योजना से सीधे-सीधे प्राइवेट कम्पनियों को जोड़ा गया। प्रधानमंत्री से खुद इन प्राइवेट कम्पनियों के लिए फसल बीमा योजना के साथ अपना पद, नाम जोड़कर कम्पनियों के बीमा प्रचारक का काम किया। आज इस योजना का नतीजा यह है कि बीमा कम्पनियाँ जहाँ करोड़ों का मुनाफा लूट रही हैं। वहीं किसानों की आय में रत्तीभर भी कोई इजाफा नहीं हुआ है, उल्टा उनसे फसल बीमा के नाम पर करोड़ों रुपये की उगाही की जा रही है।

इकबालिया बयान

--रेमण्ड नैट टर्नर

"जब खरीद और बिक्री कानून द्वारा नियंत्रित होने लगती है, तो सबसे पहले खरीदे और बेचे जाने वाले माल सांसद और विधायक होते हैं।"

-पी. जे. ओश्रूर्के

"परिषद सदस्य फलाने, आपने कहा
आप मेरे लक्ष्य का समर्थन करेंगे..."
मैंने झूठ बोला था।
मैं तो अपने फायदे पर निगाह रखता हूँ-
और इस सबसे कठिन समय के दौरान
मुझमें अपराध के प्रति नरमी नहीं पायेंगे...
मैं अपनी टोपी मैदान में उछाल रहा हूँ
महापौर पद की दौड़ के लिए- क्योंकि
वास्तव में, उसी से हासिल हो सकती है मुझे
जोर-जबर की कुर्सी- एकदम बेजोड़-
और बन्दूक के नीचे से बच निकलने की राह
और वास्तव में कुछ काम करवाना बनाना
अपने मतलब लायक, दमदार नीति जो
हमारे लोगों की, सभी लोगों की मदद करे!
और मैं मदद करने की स्थिति में रहूँगा
हमारे और भी लोगों सभी लोगों की
मुख्यमंत्री बनकर...
अब कोई कुछ बिगाड़ नहीं पायेगा
कोई इल्जाम नहीं लगाएगा चुनावी
तिकड़मबाजी का
राज्य सभा में! और जब मैं संसद की दौड़ में रहूँगा
तब मदद करने की स्थिति में रहूँगा मैं
हमारे और भी लोगों सभी लोगों की!
अड़ंगेबाजी के दिन गिने-चुने हैं
मेरे- 100 में से एक!
लेकिन, मैं तुमको बताऊँ कि मैं नहीं अपना सकता
प्रतिबन्धों पर नरम रवैया;
कमजोर नहीं पड़ूँगा साथ देने में
हमारे लिए लड़ने वाले पुरुषों और महिलाओं का
दुनिया भर में
अरे वाह, अब कहाँ हैं आहें भरने वाले?
बारीक फर्क बतानेवाले कहाँ हैं? तुम्हारे बेवकूफ
भोंदू कम्युनिस्ट जो कहते थे कि तुम
राजनीति को कलाबाजी मत समझो
समझौता मत करो - "झूठ मत बोलो -
आसान जीत के लिए तिकड़म मत भिड़ाओ..."
मैं उस बदलाव के करीब हूँ
जिस पर तुम यकीन कर सकते हो-
आकाश में शकरकंद की ऐसी-तैसी...

(रेमण्ड नैट टर्नर ब्लैक एजेंडा रिपोर्ट के मुकामी कवि और मंच अभिनेता हैं। मंथली रिव्यू, 1 मार्च 2002 में प्रकाशित)

--अनुवाद दिगम्बर

पेड़ को जब आग लगी

पेड़ को जब आग लगी
कुछ परिंदे उड़ गए
उनको तो जाना ही था
पर एक चिड़िया जाते-जाते
वापस आ गई
वो मन में यह सोच कर आई
पेड़ क्या सोचेगा बेचारा
उसको लगा जैसे
पेड़ की हों हजार आंखें
और जो देख रहीं हों
सब परिंदों को उड़ते हुए
पास ही एक तालाब था
वह चिड़िया अपनी चोंच में
वहाँ से जल भरकर उस
पेड़ पर डालने लग गई
उधर से एक मुसाफिर गुजरा
और ये दृश्य देखकर डर गया
वह सोचने लगा कहीं
चिड़िया जल ही ना जाए
वह कहने लगा चिड़िया
तेरी छोटी-सी चोंच से
जलते हुए पेड़ की आग
कैसे बुझ सकती है?
वह बोली मैं जानती हूँ मुसाफिर
मेरी छोटी-सी चोंच से
पेड़ की आग नहीं बुझेगी
पर जब भी जंगल का इतिहास लिखा जाएगा
तो मेरा नाम आग बुझाने वालों में आएगा
और इस पेड़ के वारिस कहेंगे
कि जब भी जंगल को आग लगती है
सारे परिंदे डरकर उड़ जाते हैं
पर कई वापिस आ जाते हैं
यह बात सुनकर चिड़िया की
राहगीर भी उसके साथ ही लग गया
पेड़ पर पानी फेंकने
वहां से एक और, एक और राही आते गए
और फिर हजारों परिंदें भी
वापस आ गए
चोंचों में नीर भरकर
कहते हैं बुझ गई थी
उस पेड़ की आग
और किसी अगली बहार में
पेड़ के झुलसे हुए तने से
फूट आए थे नये पत्ते
जैसे कि काले अक्षर दिखते हैं
सफेद पन्नों पर
पेड़ को आस और उम्मीद
कोशिश और विश्वास
की नज्म जैसा हो गया था
मेरी मां ने जब यह कहानी सुनाई
और कहा था
तू कभी मत सोचना कि तू कमजोर है
और तू कभी मत सोचना है कि तू अकेला है
जब भी पेड़ पर आग लगे
तुम मुड़ आना
अपनी चोंच में पानी भर के
उस चिड़िया को याद करके

— सुरजीत पातर